देवदासी

रांगेय राघव

◆

क्रम

देवदासी

उस समय मन्दिर निर्जन होचुका था। निस्तब्धता सनसनारही थी। बाहर घोर अन्धकार था। आकाशमे बिजली कड़करही थी। उस युवकने तलवारको टेका और उठखडा हुआ। भीतर सब काम करचुकनेपर पुजारी ने सोचा कि अब शीघ्रही उसे प्रतिमाके चरणोंपर शीश रखकर सोने जाना चाहिए।

पल्लव-राजके इस विशाल मन्दिरमे कामाक्षीका यह भव्य स्वरूप देखनेकेलिए दक्षिणापथके अनेक भागोसे लोग आ - आकर एकत्रित होते थे। तीन-सौ वर्ष पहले सातवाहनोंके अन्तपर सम्राट् विष्णुगोपने पल्लव साम्राज्यको स्वतन्त्र करदिया था। उनके उत्तराधिकारी आज कदम्बो और गागेयोके भी प्रभु थे। पेलार नदीके पास काञ्चीका भव्य नगर भुवन-विख्यात था। राजप्रासादके विराट् अलिन्दोमे दिनमें अगरु-धूम जलता, रात्रिमे दीपाधारोंसे प्रकाश जगमगाता। बाजार - हाटमे सुदूर जावा-सुमात्राके व्यापारी आ - आकर बैठते। समुद्रतीरपर अनेक सफेद पालवाले जहाज खडे रहते, प्रकाशस्तम्भोंसे रातको किरणे फूट-फूटकर अथाह सागरकी चञ्चल जलराशिपर खेल उठती। महेन्द्रके समान विक्रमी सम्राट् सिंहविष्णु के चरणोंपर आज प्राचीन चोल और पाण्ड्यके रत्नजटित मुकुट रखे थे, चालुक्यराजने मैत्रीका कर बढादिया था। सम्राट् सिंहविष्णु युवावस्थाको आजसे अनेक वर्ष पहले पार करचुके थे। राजकुमार महेन्द्रवर्माकी सन्त अप्पारस्वामीके प्रति श्रद्धा होना प्रजामे प्रसिद्ध होचुका था, क्योंकि वह पिताकी आज्ञाके विनाही नगरके ईशान कोणमें शैव मन्दिर बनवारहे थे।

पुजारी रत्नगिरिने इधर-उधर देख भक्तिसे प्रतिमाको प्रणाम किया और सोने चलागया। प्रायः आधीरात बीतगयी। आकाशमे बादल गरजरहे

थे। मन्दिरका विशाल प्राङ्गण पानीसे भीगगया था। उसी समय बिजली बड़े वेगसे कडकउठी। मन्दिरका विशाल गोपुर अन्धकारमे एक बार चमकउठा। युवक तलवार लिये कुछ देर खडारहा, फिर बाह्य परिवेष्टिको लाँघकर भीतर अलिन्दमे आगया। वह एक स्तम्भके पीछे होगया और अन्धकारमे कुछ देखनेका प्रयत्न करनेलगा।

किसीने उसके कन्धेपर हाथ रखकर धीरेसे कहा—'आगये रङ्गभद्र ?'

रङ्गभद्रने मुडकर कहा—'तुम बुलाती और मैं न आता रुक्मिणी! देवदासीका कहना तो भगवान् भी नही टाल सकते फिर मैं तो साधारण मनुष्य हूँ।'

'तुम सचमुच बड़े साहसी हो कुमार!' देवदासीने धीरेसे कहा। युवकने उसका वह दीर्घ निश्वास भी सुना। उसने उद्वेगसे उसका हाथ पकडलिया और कहा—'रुक्मिणी, मैं कबतक तुम्हारी अवहेलनामे तडपता रहूँगा? कबतक मैं उस भविष्यके सागरमे लहरोकी दयापर अपना पोत भटकाता रहूँगा? आज प्रायः एक वर्ष बीतगया। अब मुझे फिर सिंहल लौटजाना होगा। अबके मैं सिंहलके बहुमूल्य मोती काशी भेजनेका व्यापार करना चाहता हूँ। चलोगी मेरे साथ ?'

देवदासीने कुछ नही कहा। वह चुपचाप देखतीरही। युवकने फिर कहा—'सुन्दरी, तुम किस चिन्तामें डूबगयी हो? धनकी कमी नहीं, धर्मकी कमी नहीं, अधिकारकी कमी नही, प्रेमकी कमी नही, और तुम रूपशालिनी हो तो फिर मुझे रूपकी भी कमी नहीं—फिर तुम्हे कौनसी चिन्ता खाये जारही है?'

देवदासी काँपउठी। उसने धीरेसे कहा—'धीरे कुमार, धीरे, कही देवता न सुनले। मैं जाती हूँ।'

वह सचमुच एकदम चलीगयी और युवकके कण्ठमें उसका स्वर अटककर रहगया।

मन्दिरका विशाल अलिन्द सूना होगया। युवक लौटचला।

—२—

दूसरे दिन पुजारीने पूजा समाप्त करके बाह्य प्रवेशद्वारके पास आकर देखा सूर्य्यमणि भक्तिसे नमस्कार कररही थी। उसने गद्गद् होकर उसे आशीर्वाद दिया। सूर्य्यमणिके श्याम मुखपर उस स्वर्णमुकुटकी हल्की प्रभा छिटककर उसे किंचित् हरिताभ बनारही थी। उसके सफेद चीनांशुकोंमे वह सुघर अङ्ग-सगठन किसी चतुर शिल्पीकी कलाका अद्भुत प्रमाण लगता था। रत्नों और आभूषणोंसे लदी वह कुमारी, मानसरोवरके मासल इन्दीवर-सी पुलकउठी। उसके विशाल नयनोंकी कोरोंमे शतदलके काँपते दलोंकी लालिमा, चपल चितवनकी विद्युत्-वाहिनि तृष्णाको सहलादेती थी। उसने कहा—'देव, आप आजकल मुझे कभी रामायण नही सुनाते? पहले तो आप-का स्वर गूँजता था: रुक्मिणी नृत्य करती थी: समस्त मन्दिर गूँज उठता था. माता कामाक्षीकी प्रतिमाके अधरोपर मुस्कान छाजाती था !'

'बेटी', पुजारीने मन्दस्मितसे कहा—'रत्नगिरि तो तत्पर है, किन्तु तू जबसे राजमाताकी सेवामे जानेलगी है तबसे तुझे देवसेवाका समय ही कहाँ मिलता है? अबतो तू सेनापतिके पुत्र धनञ्जयकी पत्नी होने जारही है न?'

'हाँ, भगवन्!' सूर्य्यमणिने अपने पाँवके अँगूठेको लाजसे देखते हुए कहा—'लेकिन मैं आज रामायण सुने बिना नहीं जाऊँगी।'

'अरे, तेरा हठ नहीं गया, पगली!' रत्नगिरिने हर्षित होते कहा। और फिर उसने आवाज दी—'रुक्मिणी!'

रुक्मिणी स्तम्भके पीछेसे निकलकर आगयी।

वृद्ध पुजारीने कहा—'बेटी, सूर्य्यमणि रामायण सुनना चाहती है।'

'ओह', रुक्मिणीने पुलकतेहुए कहा—'मुझसे ही क्यों न कहदिया? अभी लो।'

कुछही देर बाद उस अलिन्दमे लोगोंकी एकभीड़ इकट्ठी होगयी। सूर्य्यमणिने देखा धनञ्जय भी खड़ा था।

वृद्ध रत्नगिरिने स्वस्तिवाचन किया और मृदङ्गपर थाप पडी। उधर देवदासी रुक्मिणीका नूपुर बजउठा। द्रिम-द्रिमके उस अप्रतिहत नादपर यौवनसे स्फीत कमल-चरणका मथर चलन स्तभोसे टकराकर समस्त अतराल में कॉपउठा। युवक धनञ्जयके नयन गड़गये। देवदासी आज मेनका-सा नृत्य कररही थी। रत्नगिरि गानेलगे। उनके गम्भीर स्वरसे लोगोंके हृदयोंमें एक पवित्र भावना छागयी। नर्त्तकीके अङ्गचालनका मादक उल्लास धनञ्जय की धमनी-धमनीमे डोलउठा। सूर्य्यमणिने एकाएक दृष्टि उठाकर देखा धनञ्जय मन्त्रमुग्ध-सा लोलुप दृष्टिसे देवदासीके उच्छृङ्खल यौवनको खारहा था। वह चञ्चल होगयी। शङ्का और ईर्ष्याने उसके हृदयपर आघात किया। देवदासी नृत्य करतीरही, रत्नगिरि गातारहा और सूर्य्यमणिने देखा धनञ्जयके नयनोके पक्ष्म गिरना भूलगये थे। वह धीरेसे उठी और धनञ्जय के पास गयी। धनञ्जयने उसे मुड़कर भी नही देखा। सूर्य्यमणिकेलिए समस्त सौन्दर्य विष होगया। वह एकाएक चिल्लाउठी—'रोकदो यह नृत्य! यह नृत्य रोकदो! नही, नही, यह नृत्य नहीं है !'

देवदासी विभोर होकर नाचरही थी। एकाएक उसके पैर ठिठक गये, जैसे किसीने उसपर वज्रका आघात किया हो। उसने देखा सूर्य्यमणि उसे ज्वलन्त नेत्रोसे देखरही थी। रत्नगिरि गाना रोककर उठखड़ा हुआ। एकत्रित जन समुदाय कोलाहल करनेलगा।

देवदासी क्रोधसे पुकार उठी—'देवदासीका अपमान करना देवता का अपमान करना है मूर्ख लडकी! यदि तेरे हृदयमे पाप है तो तू मन्दिर छोड़कर चलीजा।'

इससे पहले कि रत्नगिरि कुछ कहे रुक्मिणी परिक्रमाकी ओर चल पड़ी। उन्मत्त-सा धनञ्जय उसके पीछे चलदिया। सूर्य्यमणि कटे वृक्ष-सी

भूमिपर गिरकर रोनेलगी। समुदाय तितर-बितर होनेलगा। रत्नगिरि कुछभी नहीं समझा। इस प्रकार अकारण व्याघातसे उसका चित्त सूर्य्यमणिसे उदासीन होगया। वह उठकर भीतर चलागया। सूर्य्यमणि स्तम्भके किनारे रोतीरही।

—३—

वृद्ध सिन्धुनाद कवि था। सूर्य्यमणि उसकी एकमात्र पुत्री थी। जब वह गाता था साम्राज्यका बड़े-से-बड़ा कठोर हृदय सेनाका उच्च पदाधिकारी झूमउठता था। उसके गीतोंको आज पल्लव ही नहीं, चोल और पाण्ड्यके घर-घरकी स्त्रियाँ गातीं, पुरुष मुग्ध होकर सुनते और सम्राट् सिंहविष्णु उसे अपने भाईके समान प्यार करते। देवदासियाँ उसके गीतों पर जिस तन्मयतासे नृत्य करती उसे देखकर लगता जैसे वह सचमुच देव-कन्या हों। उसके गीतोंकी प्रवहमान लय प्राचीसे पश्चिमतक गगनमें अनन्त वर्णोंसे भरी नीलिमाकी छाया-सी काँपती रहती और प्रेम और करुणाका वह स्रोत कहींभी समाप्त नही होता, कहींभी जैसे विश्रान्तिको आवास न मिलता।

सिन्धुनाद इस समय वीणाके तारोंपर उँगलियाँ फेरकर यौवनके खोयेहुए स्वरका उत्ताल ढूँढरहे थे। उनके शरीरपर बहुमूल्य रेशम मन्द-मन्द वायुमे फहरारहा था। उनके प्रकोष्ठकी दीवारोंपर सुदूर ताम्रलिप्तिके प्रसिद्ध चित्रकारोंने अद्भुत चित्र अङ्कित किये थे। स्फटिकके स्तम्भोंपर दीपों का झिलमिल प्रकाश प्रतिध्वनित होरहा था, जैसे बादलोंमे बिजली चमक रही थी। मादक सुरभि-वाही समीर जब अगरुधूमकी कवरी खोलकर नृत्य करने लगता था तो दीवारोंपर छायाएँ मुद्रा बनाने लगती और वीणाके करुण स्वर रुमझुम करते वायुकी लहर-लहरपर गाउठते।

सिन्धुनाद इस समय दमयन्तीका विलाप गारहे थे। उनकी यह कविता अजर-अमर होजायेगी। आज उनके भाव सीमामें नहीं थे। नल

चलागया है। दमयन्ती पेड-पेड़से पूछरही है, मृग-मृगी कातर होकर रो पडे हैं, आकाशमें प्रतिपदाका चन्द्र उगआया है, सघन वनस्पतिपर उसकी विलोल मुखरा किरणें कॉपरही हैं जैसे सागरपर फेन कॉपरहे हो, जैसे श्यामा सुन्दरीके कर्णफूलोकी आभासे कपोलोपर प्रकाश रणरण करता अवगुण्ठन खीचरहा हो।

सिन्धुनाद तन्मय होकर विभोर होगये। एकाएक भारी भारी श्वास लेती सूर्य्यमणिने प्रवेश किया और चुपचाप पास बैठकर सुननेलगी।

दमयन्ती उस समय आकाशके तारोंसे पुकार-पुकारकर पूछरही थी—हे नील असीमके बुद्बुदो! हे अनन्त कवरीके शीशफूलों! कहाँ है वह मेरे हृदयकी एकमात्र सान्त्वना?

सूर्य्यमणि रोउठी। वृद्धका स्वप्न टूटगया। गीतके आवर्त्तोंमे पडकर सूर्य्यमणिके टूटे प्यारकी भग्न नौका झटके खानेलगी। वह पिताकी गोद मे सिर रखकर रोनेलगी। वृद्धने एक हाथसे वीणाको हटादिया और फिर उसने कहा—'क्या हुआ वत्से?' पहले उसने समझा शायद गीतको सुन कर रोरही है। सूर्य्यमणिने कुछभी नही कहा। वह रोतीरही। उसके मुख की पत्र-लेखा बिगड़गयी। वृद्धने उसका सिर उठाया। वेदनासे उसका मुख कातर होउठा था। वृद्धका हृदय विह्वल होउठा। उसने कहा—'पुत्री, तुझे किस बातका शोक है? मैंने आजतक कभी तेरी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य्य नही किया। आजतक तू ही मेरे जीवनका एकमात्र सहारा रही है। फिर तेरे नयनोंमे यह व्याकुल अश्रु किसलिए? करुण रात्रिकी भाँति तेरे इन पङ्कज दलोंपर यह नीहार-कण क्यों?'

सूर्य्यमणिने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह रोतीरही। उस समय कवि को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे साक्षात् कामाक्षी आज गलपयित कण्ठसे उच्छ्वास रुद्ध-सी आर्त्तमना सिसकउठी थी। उसके नयनोंमे आँसू छागये। देरतक दोनों कुछ न बोले। सिन्धुनाद अपनी पुत्रीके सिरपर हाथ फेरतेरहे, जैसे

उन्होंने कविताको सहलादिया था। सूर्य्यमणिके सघन सचिक्कण केशोंपर वृद्ध का वात्सल्यसे भरा आर्द्र श्वास ऊष्मासे भरकर बिखरगया। सूर्य्यमणिका हृदय उद्वेगसे बारबार ठोकर खाकर गिरजाता और आँसू बह-बह आते।

वृद्धने आन्दोलित होकर कहा—'सूर्य्ये, कह न ? क्या कष्ट है तुझे जो पावसकी नदीकी भाँति तेरे आँसू अज्ञातवास करने निकले जारहे हैं ?'

सूर्य्यमणिने सिर उठाया। आँखोंमे आँसू चमकरहे थे, जैसे हीरक के चषकमे वारुणी छलकरही थी। डबडबाते अश्रु प्रभातके उज्ज्वल प्रकाशके समान काँपरहे थे अथवा जैसे सीपमे मोती जगमगाउठे हो।

'सूर्य्यमणि' वृद्धने फिर कहा—'पल्लवके इस समुद्र पर्य्यंत साम्राज्यमे मैं तेरे अतिरिक्त किसीको भी इतना भाग्यशाली नही गिनता था। आज तेरी आँखोंमे यह अश्रु क्यों ? सिन्धुनादने वही किया जो तूने चाहा। जिसके लिए राजकुमारियाँ लालायित थी उस कामदेवके सदृश लावण्य मनोहर धनञ्जयकी तू पत्नी होनेवाली है, फिर तुझे कैसा दुःख ?'

सूर्य्यमणिने धीरेसे कहा—'पिता, वह मेरी उपेक्षा कररहा है। आज वह देवमन्दिरमे एक साधारण नर्त्तकीके पीछे पागल-सा घूमरहा था। मैं हृदयकी साक्षी करके कहती हूँ उसने मुझे एकबार भी मुड़कर नहीं देखा।'

'यह नहीं होसकता सूर्य्यमणि, यह नही होसकता।' वृद्ध सिन्धुनाद उठखड़ेहुए। 'किन्तु' उन्होंने कहा—'प्रेममे बल नही चलसकता। मैं जानता हूँ धनञ्जय युवक है। यौवन प्रेमके अतिरिक्त लोभमे भी पडसकता है। किन्तु बल प्रयोग भी तो नही किया जासकता। मैं उसे समझाऊँगा पुत्री, इतनी व्याकुल न हो।'

'नहीं पिता' उच्छ्वसित सूर्य्यमणिने कहा— 'नर्त्तकी मुझसे भी सुन्दर है। उसका रङ्ग तुहिन-सा श्वेत, कमल-सा लालिम, रेशम-सा चिकना है, और सागर-सा गम्भीर रूप है। उसमे अनावृत यौवन है, मादकतामे वह मेनका जैसी है। उसके नयनोंमे त्रिभुवन काँपते हैं, मेखलाकी प्रभासे

उसकी मन्द-मन्द गतिमे भुवनमोहिनी वशीकरणकी शक्ति आजाती है। उसकी कोमल बाहु जब नृत्य करनेमें लचकती हैं तब स्वर्गका सुख जैसे तुलापर टँगजाता है। उसके केशोंकी सुरभिसे देवमन्दिर कमलवनकी भाँति गन्धित रहता है, उसकी मासल गरिमापर चीनाशुक ऐसे दिखायी देता है जैसे शरद्के प्रसन्न आकाशमे धवल स्वर्गगङ्गाका मुखरित प्रवाह हो।

सिन्धुनाद हठात् बोलउठे—'सूर्य्यमणि, वह कौन है?'

सूर्य्यमणिने पराजित स्वरमे कहा— 'पिता, वह देवदासी रुक्मिणी है।'

'देवदासी रुक्मिणी!' उनके मुखसे आश्चर्य्यसे निकलगया।

'हाँ, पुजारी रत्नगिरिकी पुत्री रुक्मिणी।'

'ओह!' कहकर कवि सिन्धुनाद बैठगये जैसे एकाएक चलते-चलते महानद थमजाय और समस्त लहरोंका कलकल नाद क्षणभरकेलिए श्वास रोककर स्तब्ध होजाय। उन्होंने कहा—'सूर्य्यमणि, तू जा। मुझे सोचने दे।'

सूर्य्यमणि चकित-सी लौटआयी। वृद्ध सिन्धुनादको कुछभी नहीं सूझा। वह चुपचाप वैसेही बैठे शून्य दृष्टिसे सामने जलते दीपाधारमे काँपती शिखाओंको देखतेरहे।

—४—

रात्रिके निरावरण नीलाकाशमे सहस्रों नक्षत्र टिमटिमानेलगे। पुजारी रत्नगिरि सोचमे पडगया। उसके वृद्ध मुखपर चिन्ताकी रेखाएँ खिंचगयी। कुछ देर वह टहलतारहा। वृद्ध सिन्धुनादने कहा—'तुम जानते हो रत्नगिरि, सबकुछ जानते हो। पर देवदासीके प्रति धनञ्जयका हृदय आकर्षित है यह तुम भी नही जानते, मुझे इसका विस्मय है।'

'तुम भी वृद्ध होगये हो सिन्धुनाद! जीवन-भर जिसने अटूट

विश्वामित्रका-सा दर्प कभी नीचा नहीं होनेदिया, जिसके पवित्र जीवनसे समार विस्मित होउठा था, जिसके सामने सम्राट् सिंहविष्णु एक साधारण नागरिककी भाँति सिर झुकाकर खडा रहता है उसकी बातपर तुम सन्देह कररहे हो ? जिसने तुम्हारे जीवनके महानतम पापको छिपानेकेलिए अपने युगयुगके सचित तप और यशको ठुकरादिया, जिसने ब्रह्मचारी होकर भी केवल तुम्हारी मित्रताकेलिए रुक्मिणीको अपनी पुत्री कहकर प्रसिद्ध कर दिया, उसकी बातपर तुम अविश्वास कररहे हो ?'

सिन्धुनादने कम्पित कण्ठसे कहा—'मित्र, यह तुम क्या कह रहे हो?'

रत्नगिरिने कहा—'तुम मेरे बाल्य-सखा ही नहीं, गुरुभाई भी हो। तुम कवि हो। सौन्दर्य्यकी छलना ही तुम्हारे अन्तस्तलकी अन्तिम प्रेरणा है। जिस दिन तुमने राजकुमारी इन्दिराको देखा था उसीदिन मैंने तुमसे कहा था कि तुम भूल कररहे हो। किन्तु तुमने कुछभी नहीं सुना। आजसे बीस वर्ष पहिले जब तुम रुक्मिणीको गोदमे लेकर आये थे मैंने उसे बिना हिचकिचाये गोदीमे उठालिया था। राजकुमारी इन्दिरा आज राजमाता इन्दिरा है। आज ससार उसके पुण्यकी गाथा गारहा है। वह नहीं जानती कि उसका पाप आजभी जीवित है। उससे कहचुका हूँ कि रुक्मिणी मरचुकी है। किन्तु सिन्धुनाद, आज जब वह पाप मानव-सत्ताके परम पुण्यके रूपमे मुझे एकमात्र सान्त्वना देरहा है, तुम उसपर लाञ्छन लगारहे हो? रुक्मिणी की पवित्रता तुषारधौत शतदलके समान है, देवतामे उसकी भक्ति सुमेरुके समान है। उसने अपना तन-मन-धन केवल, केवल देवताकी सेवामे अर्पित करदिया है। वह मनुष्यसे प्रेम नहीं करसकती। मैं उसे नहीं देसकता। देवी कामाक्षीकी शपथ है मैं उसे नहीं देसकता।'

'तब तो सूर्य्यमणि रोरोकर मरजायगी?' सिन्धुनादने करुण स्वर से कहा—'बोलो रत्नगिरि, मेरा इस ससारमे और कौन है? किसलिए मैं इतनी माया-ममताको परवश-सा आजभी सहेजे बैठा हूँ। यश नहीं

चाहिए, धन नही चाहिए। सासारिक भोगोंसे मैं तृप्त होचुका हूँ। देवदासी रुक्मिणीको कुछ दिनकेलिए तुम छिपा नहीं सकते ? धनञ्जय उसके पीछे पागल होरहा है। यदि यह दीपशिखा उसके सामने रहेगी तो वह शलभ की भाँति परिभ्रमण करके अपने पख जलालेगा। देवदासीसे कभी भी उसका विवाह नही होसकता। फिर सूर्य्यमणिके जीवनपर आघात किसलिए ?'

रत्नगिरि गम्भीर स्वरसे चिल्ला उठा— 'सिन्धुनाद, रुक्मिणी भी तुम्हारी पुत्री है। क्या तुम एक पुत्रीकेलिए दूसरीका अहित करना चाहते हो ? जब ससारमे तुम्हे राजकुमारी इन्दिरासे बढ़कर कुछभी नही था उस समय रुक्मिणी ही तुम्हारी सन्तान थी। क्या अब तुमको उससे तनिक भी स्नेह नही ? क्या ससारके नियमोंमे तुम्हारा हृदय इतना कायर होगया है कि यदि ससार नही सह सकता तो तुम भी उसे पुत्री नहीं मान सकते ?'

सिन्धुनाद उद्भ्रान्त-से इधर उधर घूमनेलगे। उनके मुखपर आ-शङ्का काँपरही थी। वे दो पाषाणोंके बीचमे भिंचगये थे। उन्होंने मुडकर कहा—'तो रत्नगिरि, देवदासीको मुझे देदो। मैं साम्राज्यके नियमोंको ठोकर मारकर, देवताका अपमान करके, अपने प्राणोंका मोह छोडकर उसे अपनी पुत्री घोषित करूँगा और उसका कही विवाह करदूँगा।'

रत्नगिरिने धीरेसे कहा—'वह नहीं होसकता सिन्धुनाद !'

'तुम डरते हो रत्नगिरि ?' सिन्धुनादने आगे बढकर कहा—'राज-माता इन्दिराका सतीत्व डूबजायगा ? पाड्य, चोल और चालुक्य देशोंमे पल्लवराजके कुटुम्बकी निन्दाके गीत गायेजायेंगे ? सिन्धुनादका पाप प्रकट होजायगा ? रत्नगिरिकी घोर मिथ्या सूर्य्यकी तरह जगमगा उठेगी, इसलिए ?'

'नहीं', रत्नगिरिने कहा — 'रुक्मिणी फिरसे पापमे लिप्त नहीं हो सकती। वह देवताको निष्काम रूपसे अर्पित होचुकी है। वह लौटायी नही जासकती। उसका जीवन धर्मका एक महान् छन्द है, उसको अपौरुषेय कहकर ही गाया जासकता है। वह कोई साधारण हाटोंमे नाचनेवाली स्त्री

नही है, वह कलाओंम पारङ्गत होकर पुरुषोंसे पुष्कलकेलिए विलास करने वाली गणिका नही है। वह उत्सर्ग करचुकी है अपना स्त्रीत्व, अपना मातृत्व, आजन्म कुमारी रहनेकेलिए। वह नहीं लौट सकती। वह देवता की सम्पत्ति है। सिन्धुनाद, तुम कर्त्य-अकर्त्यका भेद नहीं समझ पारहे हो। तभी तुम कविताका प्रथम चरण प्रेम भूलगये हो। जाओ लौट जाओ! देवदासी तुम सबसे अस्पृश्य आकाश-मन्दाकिनीका कमल है। उसे तुम नही पासकते।'

सिन्धुनाद आर्त्त-से बैठगये। उनसे कुछभी नही कहागया। उन्हे चारो ओर अँधेरा ही अँधेरा छाता हुआ दिखनेलगा। उनके सामने सूर्य्य-मणिका आतुर स्वरूप बारबार घूमगया, जो उनकी प्रतीक्षा करती होगी, जिसे नही मालूम कि रुक्मिणी उसीकी बहिन है। जिस पिताकी कीर्त्तिसे आज पल्लव साम्राज्यमे स्थित सरस्वतीका अञ्चल श्वेतसे भी अधिक उज्ज्वल होउठा था, उसीका पाप वह कैसे सुन सकेगी? कैसे सह सकेगी वह यह घोर अन्धकारकी गाथा?

वह कुछभी नही सोचसके। एक दीर्घ निश्वास छोडकर वह मन्दिर से बाहर चलदिये और बाहर खडे स्वर्णरथपर जाबैठे। सारथिने रथ हाँक-दिया। वृद्ध सिन्धुनादकी आँखोमे आँसू भरआये। उनके हृदयमे आँधी चलरही थी।

रात्रिके घनघोर अन्धकारमे एक छाया-सी चलनेलगी। दूसरी ओर से दूसरी छायाका अङ्गचालन हुआ। एकने दूसरेके पास आकर कहा—'कौन? रङ्गभद्र तुम आगये?'

'हाँ देवी!' रङ्गभद्रने धीरेसे कहा—'क्या तुम तत्पर हो?'

रुक्मिणीने कुछ नहीं कहा। रङ्गभद्र बोला—'देवि! यहाँ तुम्हारा मान तब होसकता है जब तुम अर्घ्यके फूलके समान अपनी गन्ध स्वय नही पहिचान पाओगी। तुम्हारी मनुष्यताके हननपर तुम्हारा यह स्वर्ग है। किन्तु

क्या तुम्हारे हृदयमे कोई कोमलता शेष नही है ? क्या तुम केवल पाषाण हो ? किन्तु कामाक्षीके मन्दिरमे प्रस्तर गाते हैं, प्राचीरे बोलती हैं। एक तुम हो जो अपने जीवनको देवसेवाकी छलनामे बिताये जारही हो। कभी किसीसे दो पल प्रेमकी बात नही, तुम तो स्त्रीत्वके प्रारम्भिक चिह्नतक भूलगयी हो। किसलिए यह सब रुक्मिणी ?'

'देवताकेलिए रङ्गभद्र। क्या यह सब त्याग करना मेरेलिए पाप नही होगा ?'

'पाप ?' रङ्गभद्रने हँसकर कहा—'पाप यह नहीं है कि जीते-जागते मनुष्यको एक कठपुतली बनादिया है ? उससे उसकी दृष्टि छीनकर दूसरो को लूटनेकेलिए उसे नयन देदिये हैं, उससे उसके हृदयका अपहरण करके उसे दूसरोके हृदयोपर दस्युवृत्ति करनेकेलिए छोडदिया है ? यदि मनुष्यको झूठे प्रलोभन देकर उसे मनुष्य नही रहनेदिया तो इससे बढकर और कौन-सा पुण्य होगा ?

'रङ्गभद्र ! पिताने तो देवसेवाको संसारका सबसे बडा सुख बताया है। फिर तुम क्या कहरहे हो ? मैं तुम्हारे मुखसे पापको बोलताहुआ सुन-कर काँपउठती हूँ। किन्तु न-जाने तुम जो कहते हो अचानक ही क्यो मेरे हृदयपर आघात करउठता है। मैं नही जानती तुम मुझे इतने अच्छे क्यों लगते हो ?'

रङ्गभद्रका मुख प्रफुल्लित होगया उसने कहा—'रुक्मिणी, वह स्त्री स्त्री नही जो अपने प्रेमीके आलिङ्गनमे बद्ध होकर विभोर नही होसकती, जो आँखोमे आँखे खोकर एकबार कलकण्ठसे उसे अपना स्वामी कहने को उद्यत नही होसकती। कहाँ है तुम्हारे जीवनकी नीरव हाहाकार करती वेदनाका अन्त कुमारी ? जिस देवताके पीछे तुम पागल होरही हो, क्या कभी उसने तुम्हारे हृदयपर हाथ रखकर उसकी धड़कनको सुना ? क्या बसन्तके मलयानिलमे पुसकोकिलकी कुहू सुनकर कभी तुम्हारे हृदयमे हूक

नहीं उठी ? बोलो देवदासी ! यदि प्रेम पाप है तो किसलिए कालिदासका नाम आज प्रातःस्मरणीय है ? किसलिए इस समस्त भूलोकमें प्राणी एक-दूसरेकेलिए कातर है ? यदि प्रेम पाप है तो तुम्हे क्यों आजीवन देवतासे प्रेम रखनेका दुरभिमान सिखायागया है ?'

देवदासी सोचमे पडगयी । रङ्गभद्र उन्मत्त-सा कहतारहा—'क्या यह माधवी रजनीकी अनन्त सुलगन शून्यमे केवल हाहा खानेकेलिए है ? तुम्हारा यह अनिन्दित रूप, जिसको आज ससार उपेक्षाके भयावह गर्त्तमे डाले बेसुध है, किसलिए यौवनकी भुजाएँ फैलाकर हृदयमे उतरता चला जाता है ? पल्लव साम्राज्यकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नहीं जानती कि यौवन क्या है ! नहीं है ज्वालामुखियोंमे वह ताप, नहीं है आकाशके नक्षत्रोंमे वह रूप जो तुम्हारे श्वासमे है, जो तुम्हारे नयनोंमे है ? काञ्चीकी कुलनारियों का रूपका गर्व तुम्हारी अनन्त रूपराशिके सामने धूलके तुल्य है देवी !'

देवदासीने कहा—'यही तो सेनापति तनय धनञ्जय कहते थे ।'

'धनञ्जय ?' रङ्गभद्रने काँपते स्वरसे पूछा—'क्या वह आया था ? तुम्हे कब मिला ?'

देवदासीने सिर उठाकर कहा— 'कल दिनमे नृत्य हुआ था । सूर्य्यमणिने अचानक नृत्य रोकदिया । उससे रोषित होकर मैं भीतर चली गयी । पीछे-पीछे ही वह भी आगया ।'

'फिर ?' रङ्गभद्रने आशङ्कित होकर पूछा ।

'फिर वह कहने लगे—सुन्दरी, तुम्हारे सामने सूर्य्यमणि कुछभी नहीं है । मैं उसे तनिकभी नहीं चाहता । मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ । ससारमे मेरी कोई अभिलाषा नहीं, केवल तुमको प्राप्त करना चाहता हूँ ।'

रङ्गभद्रने उत्सुक होकर आवेगसे पूछा— 'और देवदासी, तुमने क्या कहा ?'

रुक्मिणीने उत्तर दिया — 'और देवदासीने क्या कहा यहभी जानना चाहते हो ? मैंने कहा — तुम मूर्ख ही नही पतित हो। एक देवदासी से तुम्हे ऐसी बात करते लज्जा नहीं आती ? क्या तुम अपनेको राजवशका उच्चारित करनेका साहस करते हो ? तुम्हारे वाक्योंमे भीषण हलाहल है जिससे देवमन्दिरकी ईट-ईट मूर्छित होती जारही है। तुम नारायणकी पवित्र विभूतिको अपमानित करनेका दुस्साहस कररहे हो ? जिससे तुम बात कररहे हो वह साधारण स्त्री नही, एक देवदासी है।'

उसका श्वास फूलगया। वह चुप होगयी। रङ्गभद्र मन्त्रमुग्ध-सा उसकी ओर देखरहा था। उसने कहा—'धन्य हो तुम देवदासी ! तुम प्रेम करना जानती हो। किन्तु जिस पाषाणको तुम जीवनका सर्वस्व बनाती हो वह आत्माका हनन है। मनुष्यकी चरम शान्ति शुष्क ज्ञान नही, भक्ति है। वह भक्ति नही जिसमें त्यागका दम्भ हो देवदासी ! मैं तुम्हे व्यर्थ ही यह जीवन नष्ट नहीं करने दूँगा। कहो रुक्मिणी, तुम मुझसे प्रेम करती हो ?'

रुक्मिणीने कुछ नही कहा। अन्धकारमे ही उसके हाथने रङ्गभद्र के दृढ़ हाथको पकड़लिया। रङ्गभद्रने उसे अपने पास खींचलिया। दोनों देर तक एक-दूसरेकी आँखोमे झाँकतेरहे। रङ्गभद्रने धीरेसे कहा— 'तुम्हारे चरणोपर जीवनका समस्त वैभव उठाकर भिक्षा माँगेगा। तुम्हारे पाँव मेरे हृदयपर चलेगे। तुम पल्लव साम्राज्यकी सबसे बडी धनवती, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, सबसे अधिक भाग्यशालिनी स्त्री होगी रुक्मिणी ! असमयका यह वैराग्य जैन्योको शोभा देसकता है जो अपने शरीरको कष्ट देना ही जीवनका निर्वाण समझनेकी भूल करते हैं। तुम वैकुण्ठकी लक्ष्मी हो। काशीमे मोती बेचकर मैं दक्षिणापथका सबसे धनवान व्यक्ति होजाऊँगा। भूलजाओ यह परिमित सीमाओके बन्धनोको ही अन्तिम सत्य समझनेकी कल्मषभरी छलना। तुम देवदासी नही हो, नारी हो। स्त्रीत्वका अधिकार तुमसे कोई नही छीन सकता।'

देवदासीका हृदय धडक उठा। उसका कण्ठ वाष्पस्फीत होगया। अन्धकारमे दूर बहुत-दूर कुछ हल्के-से तारे टिमटिमारहे थे। और कुछ नही। विशाल प्राङ्गण, दीर्घ स्तम्भ, वक्राकार अलिन्द—द्वार सब अन्धकार मे एक होगये थे। निर्जनतासे चारो ओर वायु कोलाहल-सा मचारही थी। देवदासीकी आशङ्का मन-ही मन भयभीत होगयी। उसने अपना हाथ रङ्ग-भद्रके वक्षपर रखदिया और विभोर-सी खडीरही। रङ्गभद्रने कहा—'परसा मै सिहलद्वीप जारहा हूँ। प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरे साथ पोतपर आरूढ होकर मेरी अर्द्धाङ्गिनीके रूपमे चलोगी। परसो ही काञ्चीके देव-मन्दिरमे महोत्सव होगा। उस दिन लोग अपने-अपने काममे सलग्न होगे। किसी को भी अधिक चिन्ता नहीं होगी। हम तुम परिक्रमाके पीछे वाली पुष्क-रिणीके पास मिलेगे और तुम निर्भीक, पापकी भावनासे हीन मेरे साथ चली चलोगी, क्योकि तुम मुझे प्रेम करती हो।'

देवदासीने अपना सिर रङ्गभद्रके सुदृढ वक्षस्थलपर टेकदिया। उसकी आँखे बन्द होगयीं और मुँहसे धीरेसे उच्छ्वसित हुआ—'मैं प्रतिज्ञा करती हूँ रङ्गभद्र. मैं चलूँगी। तुमने मेरी नीरवतामें जो वीणा बजायी है उससे मेरा रन्ध्र-रन्ध्र गूँजरहा है। मैं अवश्य चलूँगी।'

रङ्गभद्रने अन्धकारमे उसके केशोंको चूमलिया। देवदासी लाज से मुस्कराउठी।

—६—

राजमाता इन्दिरा उद्यानमन्दिरमे विष्णुके चरणोपर सहस्र शत-दल कमलोका धीरे-धीरे विसर्जन कररही थी। उनका हृदय पवित्र और स्निग्ध था। जब वे पूजा समाप्त करके उठीं उन्होने देखा सूर्य्यमणि उदास-सी सामने खड़ी थी। राजमाताके मुखपर करुण प्रभा फैलगयी। उन्होने कहा—'सूर्य्यमणि, आज तू इतनी उदास क्यो लगती है? श्याम मेघकी

तरलच्छाया आज तेरे नयनोमे आश्रमहीना-सी क्यों काँपरही है ? आज तू निदाघके काननकी भाँति क्यो यह दीर्घ निश्वास छोड़रही है ? सिकता पर चञ्चल क्रीडा करनेवाली लहरके समान तेरी स्मित आज एकदम ही कहाँ लुप्त होगयी ?'

सूर्य्यमणिने सिर झुकालिया। राजमाताने स्नेहसे फिर कहा—'महाकविकी तनयाको ऐसी कौन सी पीडा व्याकुल करउठी है ? बोल बेटी !'

सूर्य्यमणिने कहा—'कुछ नहीं माता, ऐसे ही आज कुछ चित्तमे अनबूझ-सी ग्लानि छागयी थी।'

राजमाता चुप होगयीं। उन्हे याद आया एक दिन वहभी सिन्धुनादके प्रेममे ऐसी ही व्याकुल होउठी थी। आज बीस वर्ष बीतगये। वह अब चालीस वर्षकी थी। सिन्धुनाद पचाससे ऊपर था।

उन्होने मन-ही-मन अपने उस पापको भूलनेकेलिए नारायणका स्मरण किया। हृदय निर्मल होगया। आज वे राजमाता थी। उनके पवित्र आचरणोपर दक्षिणापथको गर्व होसकता था। उनके पतिने अपार विक्रम से चोलराजके दाँत खट्टे करदिये थे। सम्राट् सिंहविष्णुने तभीसे विधवा को अपने सरक्षणमे लेलिया था। उन्होने कहा—'सूर्य्यमणि, तेरा विवाह कबका निश्चित हुआ है ?'

सूर्य्यमणिने मुँह फेरकर उत्तर दिया—'बसन्त पञ्चमीको'—और वह वहाँसे चलीगयी।

एक दासीने झुककर कहा—'महाकवि आये हैं देवी !'

'महाकवि !' राजमाताने विस्मयसे सिर उठाकर पूछा।

'हाँ देवी !' दासीने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

'उनको उद्यानमे ही लेआओ।'

दासी चलीगयी। राजमाता शङ्कित होकर इधर-उधर घूमनेलगी।

उनका हृदय भीतर-ही-भीतर काँपउठा। आज वह उस व्यक्तिको बीस वर्ष बाद फिर देखेगी जिसकी स्मृति भी उनके जीवनका एक महान् पाप है।

इसी समय वृद्ध सिन्धुनादने दासीके साथ प्रवेश किया। राजमाता इन्दिराने उन्हे आगे बढकर स्वागत दिया। एक सङ्गमर्मरकी चौकीपर सिन्धुनाद बैठगये। दासी चलीगयी। राजमाताने दृष्टि उठाकर देखा और फिर उनका शीश झुकगया। सिन्धुनादके नयनोंमे आज वही चमक थी जो बीस वर्ष पहले उनके सर्वनाशका कारण बनगयी थी। उन्होंने सारग-पाणिका मन-ही-मन फिर स्मरण किया और कहा—'कवि, आज आपने कैसे कष्ट किया?'

सिन्धुनादने धीरे धीरे कहना प्रारम्भ किया—'एक दिन अनेक वर्ष पहले हम तुम इसी उद्यानमे अपना सब खोबैठे थे। किन्तु उस दिन भी तुमने मुझे अपना सबकुछ दिया था। आज मैं फिर तुमसे तुम्हारा सब-कुछ माँगने आया हूँ।'

राजमाताने कहा—'कवि, मैं कुछभी नहीं समझी। तुम मुझसे क्या लेना चाहते हो? सूर्य्यमणिकेलिए मैंने स्वय धनञ्जय जैसा उपयुक्त वर खोजदिया है फिर और तुम मुझसे क्या माँगना चाहते हो?'

सिन्धुनादने कहा—'देवी, धनञ्जय एक देवदासीकी ओर आकृष्ट है। वह सूर्य्यमणिकी उपेक्षा कररहा है'।

राजमाता निष्प्रभ हँसी हँसउठी। उन्होंने कहा—'तो इतने मर्माहत क्यों हो कवि! एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे?'

'नहीं देवी आज मैं सभी कुछ सुनूँगा।'

'तो सिन्धुनाद', राजमाताने कहा—'देवसेवाकेलिए अर्पित इन सहस्रों बालिकाओंके जीवनमे और एक साधारण गणिकाके जीवनमे भेद ही क्या है? साम्राज्यका धर्म भलेही इसे स्वीकार न करे, किन्तु जिन

सामन्तोंके यहाँ नगरकी प्रजाकी ललनाएँ कुछ दिन दासी बनने आती हैं और अपने यौवनकी भेंट देकर लौटजाती हैं उन सामन्तोंके यहाँ क्या देवदासियाँ वेश्या ही नहीं होतीं ? क्षमा करो कवि, दिनमे वे देवसेवा करती हैं, रातको छिपकर पुरुष-सेवा ! कवि, यौवन कभीभी सत्पथपर नहीं चलसकता। उसकी ठोकरसे विक्षत उङ्गलियोंका रक्त सदाकेलिए पथपर छूटजाता है। फिर तुम्हे इतनी चिन्ता क्यो ? कौन है वह देवदासी जो धनञ्जयके रूपकी अवहेलना करसकेगी ? कौन है वह साधारण नर्तकी जो धनञ्जयके बल और यशके अङ्कमे सबकुछ खोल न देगी ? दो दिनकी यह भूख मिटालेने दो उन्हे। जब हमारा समय था तब हम भी तो पीछे नही हटे। धनञ्जयका यह लोभ एक आलिंगनमे प्रवाहित होजायगा। और पुरुषकेलिए तो कोई पवित्रता नही, वह तो अनेक स्त्रियोमे मत्त गजराजकी भाँति क्रीड़ा करसकता है। बसन्त-पञ्चमीको यदि वह सूर्य्यमणिके साथ अग्निकी प्रदक्षिणा न करे, पुजारी फिरसे पुरुषस्य भाग्यका उन्माद न गुँजादे तो आकर इस पापिनीसे जो मन आये कहना—जो विवाहके पहले माता होचुकी थी किन्तु जिसके छलसे आजभी साम्राज्य उसकी पवित्रताके सम्मुख वैदेही और अनुसूयाको तुच्छ समझनेलगा है। बोलो सिन्धुनाद, नारीका मोल ही क्या है ? पुरुषोंके हाथामे खेलनेवाली कठपुतली : पुरुष भूमि-पर मारता है वह आकाशको चूमनेका प्रयत्न करती है। यही तो है सब से बडी दासी गृहस्वामिनीका रूप—जिसकी सत्ता अपने आपमे कुछ नही!'

'देवी!' सिन्धुनादने क्षुब्ध होकर कहा—'बीस वर्ष पहले मैंने कहा था मर्य्यादाओंका सकोच जीवनकी वास्तविकता नही है। आओ हम-तुम इस देशको छोडकर कहीं चलेजाँय। किन्तु तुमने स्वीकार नहीं किया।'

'लेकिन कवि', राजमाताने कहा—'पाप तो मिटगया, पापकी स्मृति अवश्य हृदयमे चुभती है। किन्तु कभी-कभी जब तुम्हारी कविता पढती हूँ तब लगता है कि वह पाप नहीं था, यह परवश जीवन सबसे बडा पाप है।'

'पाप ! देवी'—सिन्धुनादने कहा— 'मेरे-तुम्हारे जीवनका पाप ही आज फिर इस समस्त वैभवको भस्म करदेना चाहता है। मैं इसीसे काँप रहा हूँ। तुम देवदासीको साधारण वेश्या कहनेतकमे नहीं झिझकी, तो सुनो कि जिस साधारण नर्तकीकी पवित्रताको रुँदते देखकर भी तुम्हारा गर्व कुण्ठित नहीं होता वह तुम्हारी औरस पुत्री है। सूर्य्यमणि तुम्हारे प्रेमी की पुत्री है, किन्तु देवदासी रुक्मिणी तुम्हारी पुत्री है, तुम्हारे यौवन-तरु का प्रथम पुष्प है, तुम्हारे जीवन-सागरमे प्रतिबिम्बित होनेवाली प्रथम बालारुणकी दीप्ति है।'

राजमाताने काँपतेहुए कहा—'किन्तु रत्नगिरिने तो मुझसे कहा था वह मरचुकी है।'

'रत्नगिरि नहीं जानता था कि एक दिन बलशाली साम्राज्यके एक विशाल-स्तम्भ सेनापतिका पुत्र उसके पीछे व्याकुल होउठेगा। सहस्रों देव-दासियोंके बीच उसने उसे छिपादिया था। किन्तु यदि धनञ्जय उसकी पवित्रताको अपनी उच्छृङ्खलतामे विध्वस्त करेगा रत्नगिरि उसे कभी भी नहीं सहसकेगा। उसने कठोर तपसे अपना जीवन बिताया है। उसने दूसरोंकी भूलोंको सरल चित्तसे क्षमाकिया है। उसे रुक्मिणीसे पुत्रीका-सा स्नेह होगया है। जिसने आजन्म अखण्ड स्फटिक जैसा धवल ब्रह्मतेजस अपने चारों ओर प्रकाशित किया है वह क्रोधसे पल्लव साम्राज्यको खण्ड-खण्ड करदेगा। राजमाता, वह वैभव और सुखकी इन दीवारोंकी नींवमें पलते पापको समूल उखाड़कर फेंकदेगा। उसके दुर्वासाके-से अग्निक्रोधको ठण्डा करसके ऐसा साहस, ऐसी पवित्रता जिसमें है ? प्रजा क्या कहेगी ? देवताकी पवित्र सम्पत्तिपर वह कभी पदाघात नहीं सह सकेगा। राजमाता, मेरा मन भय से काँपउठता है।'

राजमाता सिहरकर खड़ी होगयी। उन्होंने कहा—'कवि, चलो। मैं रत्नगिरीसे मिलना चाहती हूँ। देवदासी मेरी पुत्री है। उसे मैं अपने

पास लेआऊँगी। वह मेरे शरीरका सञ्चय है। रत्नगिरि माताकी आज्ञाकी उपेक्षा नही करेगा। मेरे वक्षस्थलमे एक स्नेह काँपरहा है। मेरी पुत्री भुवन-सुन्दरी है ? वह मेरी है ? मैं उसे देखना चाहती हूँ कवि !'

सिन्धुनाद उठ खड़ेहुए। उन्होंने कहा—'रत्नगिरि पाषाण है देवी ! उसके हृदयमे एक सोता है और वह केवल देवदासी रुक्मिणीकेलिए है। वह उसकी पवित्रतापर मुग्ध है। जिस दिन उसे उसमे अपवित्रताकी गन्ध आयेगी वह अपने हाथसे उसका वध करके देव-प्रतिमाके चरणोंपर उसे समर्पित करके आत्मघात करलेगा। आत्मघातका पाप भी उसके सामने देवताके प्रति विश्वासघातकी तुलनामे कुछ नही। वह कठोर तपस्वी है। ममताके झूठे आवरणसे उसकी आँखे कभी नहीं चौंधती। आज जो माता बनकर जारही हो वह तुम्हारे मातृस्नेहको ठुकरादेगा। वह पूछेगा, कहाँ था यह प्रेम उस दिन जब सद्यःजात शिशुको स्तनसे लगानेके स्थानपर तुमने रातोंरात बाहर करदिया था। एक राजकुमारीको तुमने पाप बनादिया और जब मैंने पाप को भगवानकी छाया बनादिया है तुम फिर उसे अपवित्र करना चाहती हो ?'

राजमाताने कहा– 'फिर क्या होगा कवि ?'

सिन्धुनादने कहा—'रथ बाहर खडा है देवी, चलिए।'

राजमाताने आवाज दी—'नीला !'

दासीने आकर शीश झुकाया।

राजमाताने कहा—'शीघ्रही रथ तैयार कराओ।'

'जो आज्ञा', कहकर दासी चलीगयी।

थोडी देर बाद राजमार्गपर दो बहुमूल्य रथ दौड़नेलगे। एकपर महाकवि थे, दूसरेपर राजमाता। रथ राजमन्दिरके बाहर रुकगये। दोनों उतरपड़े।

जब वे भीतर पहुँचे उन्होंने देखा रत्नगिरि सूर्य्यमणिके सिरपर हाथ रख

कर कहरहा है—'पुत्री, यह ससार अत्यन्त कुटिल है। सत्यका उन्मीलन आज के ससारमे प्रलयका सूत्रपात होजायेगा। मैं तुझे कुछभी बताना नही चाहता। किन्तु तू पवित्र है। तेरी पवित्रताकी रक्षा करना, तुझे सत्पथपर चलाना, तेरे जीवनको श्रेष्ठ और मनोहर बनाना मेरा कर्तव्य है। मैं तेरी सदा सहायता करूँगा। तेरे सुखोकेलिए मैं कुछभी उठा नहीं रखूँगा। तुझे डरनेका कोई कारण नहीं। धनञ्जयको लाचार होकर तुझसे प्रेम ही नहीं, पवित्र परिणय करना होगा। महोत्सवके बाद मैं देवदासी रुक्मिणीको लेकर काशी चला जाऊँगा। मैं तुझे अपने ब्राह्मणत्वकी साक्षी देकर यह शपथ करता हूँ।'

राजमाताने दौडकर रोतेहुए पुजारीके चरण पकडलिये। सिन्धुनाद गद्गदसे रोनेलगे। सूर्य्यमणि कुछभी नही समझी।

अविचलित स्वरसे रत्नगिरिने कहा—'परसों राजमाता! परसों कवि! कल महोत्मव है। अन्तिम बार कल मैं कामाक्षीकी अपने हाथोंसे पूजा करूँगा। कल मैं अपने जीवनके सारे पापोकेलिए समस्त शक्तिसे देवताके चरणोंपर क्षमा मॉगूँगा। मैं जीवनकी इस लुकाछिपीसे ऊबगया हूँ कवि! मैं कही दूर चलाजाना चाहता हूँ। अपराधका सबसे बडा प्रतिदान ब्राह्मण की क्षमा है। ब्राह्मण वह नही है जो अपनी पवित्रताकी स्वर्ण और राजमद के सामने बलि देदे, ब्राह्मण वह है जो पापको पुण्य बनादे, पुण्यको साक्षात् नारायण बनादे। उठो राजमाता, उठो! राजमाताको यदि एक पुजारी के चरणोंपर लोग देखेगे तो विस्मय करेंगे।'

राजमाताके मुखसे निकला—'तुम मनुष्य नहीं हो रत्नगिरि! तुम देवता हो!'

रत्नगिरिने कहा—'नहीं राजमाता! मैं केवल देवताका एक पुजारी-मात्र हूँ।'

सूर्य्यमणि आश्चर्य्य-चकित-सी देखतीरही। पुजारी मुस्करारहा था।

—७—

राजमन्दिरकी शोभा आज अनुपम थी। द्वार-द्वारपर आम्रपल्लव बाँधेगये थे। स्थान-स्थानपर घट स्थापित करके केलेके मासगर्भा वृक्ष लगायेगये थे। समस्त मन्दिर गन्धसे सुवासित था। सम्राट् सिंहविष्णु आज अपने पूरे वैभवके साथ आये थे। एक ऊँचे मण्डपमें उनका स्वर्णसिंहासन दमकरहा था। कुमारपादीय युवराजोंके बाद यथायोग्य आसनोंपर सामन्त-गण आकर बैठरहे थे। कुलीन स्त्रियाँ एक ओर एकत्रित होरही थीं। राजकुमार महेन्द्रवर्मा चुपचाप अपने आसनपर बैठे आते जाते मनुष्योंको देखरहे थे। श्यामा सुन्दरियोंकी किलकारियाँ गवाक्षोंमेंसे झङ्कारती वायुके साथ बाहर निकलजातीं और उनके अङ्गचालनपर विभिन्न आभूषणोंकी मधुर ध्वनि फूट निकलती। योद्धाओंके भारी चरणोंसे आहत चमकती भूमि विक्षुब्ध होउठती और उनके हास्य-तरल स्वरोंमे मादकता विलोल छाया बनकर प्रभासे दीप्त दन्त-पंक्तियोंमे छिपजाती। मेखलाओंकी मदिर-मदिर क्वणन ध्वनि यौवनकी द्रिमिक-द्रिमिक हुकार बनकर चन्दन-लेपित स्तनोंके उभारके डुलनपर ताल देरही थी।

एक विराट् स्तम्भके पीछे देवदासी रुक्मिणी प्रतीक्षा कररही थी। रङ्गभद्र पास आगया। देवदासीने कहा—'नृत्यके बाद मैं भीतर जाकर पहले वस्त्र बदलूँगी फिर पुष्करिणीके पास जाऊँगी। तुम प्रायः एक प्रहरके बाद वहाँ पहुँचजाना। क्या सब तैयार है?'

रङ्गभद्रने धीरेसे कहा—'तुम्हे चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं देवी! पेलार नदीपर श्रेष्ठि रङ्गभद्रके अमूल्य वस्तुओंसे भरे चौबीस पोत खड़े हैं। बस हमारे पहुँचनेका विलम्ब है। कल हम स्वतन्त्र होंगे।'

'अच्छा, अब मैं जाती हूँ।' और वह भीतर चलीगयी। रङ्गभद्र कुछ देर वही खड़ारहा और फिर भीड़मे मिलगया। प्रसाधन प्रायः समाप्त हो

चुका था। बाहर वाद्य आदि लिये सब स्थान सज्जित करके गायक आगये थे। नृत्य प्रारम्भ होनेवाला था। सब सामनेके पटकी ओर देखरहे थे। धीरे-धीरे यवनिका उठनेलगी। जनसमुदाय स्तब्ध होकर देखनेलगा।

अनन्य सुन्दरी देवदासीको देखकर सबके नयन चकाचौंध होगये। वह साक्षात् उर्वशी-सी अङ्गचालन कररही थी। मृदगका निर्घोष प्रतिध्वनित होउठा। नर्तकीकी नूपुरध्वनिका मधुर प्रवाह सुनकर सभा चित्र-लिखित-सी देखतीरही। आज वह अद्भुत नृत्य कररही थी। उसके अङ्ग-अङ्ग मे मदन हुकाररहा था, रति-कोमल कण्ठसे अपना अजस्र रूप बहाये दे रही थी। उसके प्रवालसे अधरोंपर उन्मादकी मोहक गन्ध तड़परही थी। उसके विशाल नितम्बोंको देखकर महादेवका सहस्रों वर्षोंका तप आज हाथ खोलकर चिल्लाउठा था।

एकाएक नूपुर मिलकर बजउठे। नृत्य तीव्र गतिमय होगया। सभा स्तम्भित-सी बैठी रहगयी। उन्होंने देवदासीको देखा जैसे प्रलयके अनन्तर वसुन्धरा बाहर आरही थी। मृगमदका टीका उसके स्निग्ध वर्णपर स्वर्णकी भाँति दमकरहा था।

आज नृत्यमे विभोर वह हीरककी किरन उस मणिकुट्टिम रङ्गमञ्च पर ऐसे डोलरही थी जैसे शिवके ललाटपर चन्द्रकी स्निग्ध रश्मि कैलाशके शिखरोंपर आलोड़ित होरही हो, जैसे वीणापर उँगलियाँ द्रुतगतिसे झकार-मुखर होकर तन्मय होगयी हों! उसका उन्नत वक्षस्थल यौवनका अपराजित गर्व बनकर, अपनी पीवर मासल सुकोमलतामे चन्दनसे लिप्त ऐसा लग रहा था ज्यों युगचन्द्रपर चाँदनी बार-बार झूम-झूमकर अपने आपको भूलजाती हो। वह इस प्रकार अपनी मादकतामे अपने आप खोगयी जैसे मन्दाकिनीमे परिमल खाकर कलकण्ठ निनादित कूजनमें राजहसिनी स्वयं आपको भूलकर मृदुल लहरियोंपर अपने रेशम सदृश पखोंको खोलकर क्रीडा करनेलगती है। क्षणभरको प्रतीत होनेलगा मानों नर्तकीके साथ

समस्त वसुमती आज स्वर्गकी ओर उडजायेगी और भारालस वासनाका यह मदिर उत्साह वारुणीकी झूममे अपना अनन्त विसर्जन करदेगा।

नृत्य रुकगया। सब अविश्वाससे चारोओर देखउठे। सम्राट् सिंह-विष्णुने गद्‌गद होकर कहा—'पुजारी, तुम धन्य हो। देवदासी तुम्हारी पुत्री है?'

'हाँ, सम्राट्!' पुजारीने गर्वसे सिर झुकालिया।

राजमाता इन्दिरा और महाकवि सिन्धुनादके नयनोमे आनन्दके अश्रु छागये। सूर्य्यमणि भयार्त-सी मौन बैठीरही। देवदासीने एक बार देवताको झुककर प्रणाम किया और गर्वसे सिर उठालिया। उस समय उसके मुखपर स्वर्गीय आभा खेलउठी। रङ्गभद्र हर्षित होकर देखतारहा। धनञ्जय अपने स्थानसे उठगया और अन्धकारमे कहीं खोगया।

सम्राट्ने फिर कहा—'कवि, रुक्मिणीपर पल्लवको अभिमान है। क्या तुम्हारे हृदयमे इस रूपको देखकर सरस्वतीका सङ्गीत नही उमड़ता?'

सिन्धुनादने कहा—'मेरा कवित्व रूपकी इस अपार राशिको देखकर विक्षुब्ध होउठा है। मैं असमर्थ हूँ।'

मन्थरगतिसे चलती देवदासीने प्राङ्गण पार करके, बाह्य परिक्रमा को लाँघकर, भीतरी परिक्रमामे पाँव रखा। उसी समय उसने सुना—'सुन्दरी!'

उसके पाँव ठिठकगये। सामनेही धनञ्जय खड़ा था। उसके नयनो से वासनाने अवगुण्ठन हटादिया था। वह लोलुप दृष्टिसे उसकी ओर देखरहा था।

देवदासीने कहा—'क्या है सेनापति तनय?' धनञ्जय मन्त्रमुग्ध-सा उसे देखता रहा। देवदासीने फिर कहा—'क्या है कुमार? आप क्यों मुझे निष्कारण घूररहे हैं?

धनञ्जयने उच्छ्‌वसित स्वरमे कहा—'देवी, मैं तुम्हे प्यार करता हूँ!'

'धनञ्जय !' देवदासी हुकार उठी । बाहर प्राङ्गणमे उस समय कोई कलकण्ठसे प्रेमका मनोहर और करुण गीत गारहा था । धनञ्जय फिर भी देखतारहा । देवदासीने आगे चलनेको पग उठाया । नूपुर बजउठा । धनञ्जयको लगा जैसे रतिका विजयी डमरु आकाश, वसुन्धरा और पाताल में एक घोष भरताहुआ गूँजउठा । वह पागल होउठा । और धनञ्जयने आगे बढकर उसके कन्धोको पकडलिया । देवदासी क्रुद्ध-सी चिल्लाउठी—'धनञ्जय तुम दुस्साहस कररहे हो ।'

धनञ्जय व्याकुल होकर बोला—'रुक्मिणी, तुम भूलरही हो । मैं तुम्हारी पवित्रतासे धोखा नही खा सकता । मैंने तुम्हे उस युवकसे छिपकर बातें करते देखा है । मेरे हृदयमे आग जलरही है । आज तुम्हारे नृत्यने हविष्य डालकर उसे धधकादिया है । सुन्दरी आज मैं तुम्हे नही छोडसकता ।'

देवदासी काँपउठी । उसने कहा—'तुम पागल होगये हो धनञ्जय ! मैं तुमसे भीख माँगती हूँ । मुझे छोड दो ।'

किन्तु धनञ्जय हँस उठा । उसने उसे खींचकर अपनी छातीसे लगाकर उसके सुन्दर मुखको चूमलिया । देवदासी क्रोधसे उसके मुँहपर हाथसे आघात करउठी । विक्षुब्ध धनञ्जयको एक धक्का मारकर भागने लगी । धनञ्जय उसे पीछेसे पकडकर चिल्लाउठा— 'मैं तुझे नहीं जाने दूँगा स्त्री ! आज तुझे मेरी प्यास बुझानी ही होगी । धनञ्जय आज तक कभी स्त्रीसे अपमानित नही हुआ ।'

'नही ! नहीं ! नीच पशु ! मैं चिल्ला-चिल्लाकर सम्राट्को बुला दूँगी, तू मुझपर बलात्कार नहीं करसकता ।'

धनञ्जयने हँसकर कहा—'तो तू चिल्लाकर ही देखले ।'

देवदासीके मुँह खोलतेही उसकी कठोर उङ्गलियोंने उसकी कोमल ग्रीवाको कसलिया और वह दाबतेहुए कहनेलगा—'चिल्ला ! जितनी शक्ति हो उतना चिल्ला चिल्लाकर आकाश सिरपर उठाले । देखे कौन

तेरी रक्षाकेलिए आता है ।'

धनञ्जयने उन्मादमें भरकर पूरी शक्तिसे उसका गला दबादिया। अपने बोलनेमें वह रुक्मिणीका आर्त्तस्वर नहीं सुनसका। देवदासीका शरीर झूलगया । धनञ्जयने अपने हाथ खींचलिये। देवदासीका मृत-शरीर पृथ्वी-पर धडामसे गिरगया । धनञ्जय व्याकुल-सा देखतारहा । भयसे उसका शरीर जड होगया । यह उसने क्या किया ?

इसी समय एक कठोर स्वर सुनायी दिया—'धनञ्जय, तूने स्त्रीकी हत्या की है ? क्योंकि वह तेरे प्रलोभनमें नहीं फँससकी ? कुलागार !'

धनञ्जय काँपउठा । उसने मुडकर देखा । पुजारी रत्नगिरि द्वार पर खडा था । धनञ्जय लडखड़ा उठा । रत्नगिरिने हँसकर कहा—'भूल गया अपना समस्त बल और वैभवके अत्याचारका बर्बर रूप? स्त्रीकी हत्या करके भागना चाहता है ? तू एक देवदासीकी पवित्रताको कलुषित करना चाहता था क्योंकि तुझे सेनापतिका पुत्र होनेका गर्व था ! तेरी शक्तिके सामने देवताका अपमान एक साधारण वस्तु है ? तेरे बलके सामने एक पवित्र नारीका सतीत्व कुछभी नहीं ! धिक्कार है ऐसे वैभवको, धिक्कार है ऐसे साम्राज्यको ! ब्राह्मण तुझे शाप देता है ’

किन्तु एकाएक पुजारीकी जिह्वा रुकगयी। मस्तिष्कमें तीन बार कुछ चोट करउठा । पुजारीने कहा—'मैं सूर्य्यमणिको वचन देचुका हूँ पापी। जा भागजा । अन्यथा अभी यहाँ भीड होजायगी और तू पकड़ा जायगा । तूने अनेक हृदयोंका सर्वनाश करदिया है। किन्तु तेरेलिए जैसे युद्धभूमिमें यशकेलिए अनेक हत्या करना है वैसेही एक यहभी सही। वहाँ तू अनेक स्त्रियोंको धन और भूमिकेलिए विधवा बनाता, यहाँ तूने ब्राह्मण और देवताकी सम्पत्तिपर पदाघात किया है ।'

धनञ्जय वज्राहत-सा खड़ारहा । पुजारीने उसे धकेलकर बाहर कर दिया । उसने पास जाकर देखा देवदासीकी आँखें उलटगयी थीं, जिह्वा

बाहर निकल आयी थी। धनञ्जयने पीछेसे उसका गला घोटदिया था। तभी उसके नयनोंमे कोई चिन्ह नहीं था।

कैसा कठोर होगा उसका हृदय जो इस फूल-सी बालिकाकी हत्या करसका? सूर्य्यमणि एक हत्यारेसे विवाह करेगी? और वह देखता रहेगा? किन्तु राजमाताका मान; सिन्धुनादकी उज्ज्वल देदीप्यमान कीर्ति!

वृद्ध शवपर रोउठा। उसने कहा—'उन्हे क्षमा करदे रुक्मिणी! सिन्धुनाद तेरा पिता है, राजमाता इन्दिरा तेरी माता है, सूर्य्यमणि तेरे पिताकी पुत्री है और मैं सूर्य्यमणिको वचन देचुका हूँ। तू बिल्कुल पवित्र है आकाशकी शरद पूर्णिमाकी ज्योत्स्नासे भी अधिक श्वेत! उन्हे क्षमा कर पुत्री! मैंने तुझे बचपनसे पाला था, अपना वैराग्य मैंने तेरे कारण त्यागदिया। क्षमा कर रुक्मिणी! ब्राह्मण, देवता और देवदासीको सबकुछ खोकर भी क्षमा करना चाहिए पुत्री!'

उसने देवदासीके शरीरको स्पर्श करके ऊपर हाथ करके कहा—'देवता, नारायण, कामाक्षी! देवदासीको स्वर्गमे बुलालो। वह बिल्कुल पवित्र है।' पुजारी उठा। उसने अपने आँसू पोछलिये और बाहर निकल आया। बाहर कोई वीणा बजारहा था। रत्नगिरिने कहा—'मैंने देवदासी रुक्मिणीकी हत्या की है। मैंने देवदासी रुक्मिणीको गला घोटकर मार-डाला है। भीतरी परिक्रमामें उसका शव पडा है।'

गीत रुक गया। वीणाकी सिसक बन्द होगयी। महासम्राट् सिंहविष्णु हठात् उठ खडे हुए। उनके उठते ही समस्त सभा हड़बड़ाकर खडी हो गयी। चारों ओर निस्तब्धता छागयी। प्राङ्गणका बिल्लौरका मध्यभाग एक उदासीनता और किंकर्त्तव्य विमूढतासे स्तब्ध होगया। महोत्सव रुकगया। स्त्रियोंके आभूषण चुप होगये, पुरुषोंके नयन विस्मयसे खुल गये! प्राचीन राजमन्दिरकी विशाल प्राचीरे विक्षुब्ध होगयीं।

कुछ देरतक सब चुपचाप देखतेरहे। सम्राट्ने कहा—'कौन?

वही जिसने अभी-अभी अप्सराओंका-सा नृत्य किया था ?' •

'हाँ, वही, सम्राट् !' रत्नगिरिने दूरसे उत्तर दिया और प्राङ्गणकी ओर बढचला।

चारों ओर कोलाहल मच उटा—'पुजारी रत्नगिरिने अपनी पुत्री की हत्या करदी !' 'ब्राह्मण होकर उसने पवित्र देवताकी सम्पत्तिको मार डाला !' 'जन्मसे जिसे उसने पाला उसीपर हाथ उठाया ?' 'उसने निर-पराधिनी स्त्रीका ध्वस करदिया ?' 'ब्राह्मणने आज यह घोर पाप किया !' 'रत्नगिरिने पल्लवके गौरव-वृक्षको फल और फूलोंसे लदा देखकर भी कुठार चलादिया ?' प्राङ्गणमे आकर अकेला रत्नगिरि सुनता रहा। उसको चारो ओरसे सम्राट्, राजकुमार, सामन्तों, नागरिकों, कुलीन ललनाओं और जनसमुदायने घेरलिया। सब कुछ-न कुछ उसके विरुद्ध कहरहे थे। सम्राट् कुछ सोचरहे थे। किसीको भी विश्वास न था। पुजारी रत्नगिरि साम्राज्य का सबसे पवित्र ब्राह्मण था। चारों ओरसे प्रश्नोकी भरमार होतीरही। जनसमुदाय विक्षुब्ध होकर उसे धिक्कार रहा था। सामन्तोकी भृकुटि खिंच गयी थी। सब उसे क्रुद्ध दृष्टिसे, घृणासे व्याकुल होकर देखरहे थे, किन्तु पुजारी रत्नगिरि निर्भीक खड़ारहा। रङ्गभद्रने उसके पास जाकर कहा — 'पुजारी ! तुमने रुक्मिणीको मार डाला ? तुमने उसके मनुष्य होनेके प्रयत्न को देखकर उसका बध करदिया ? ब्राह्मण ! तुम युग-युग तक गौरवकी यातना भोगोगे। तुमने एक मनुष्यको पशु बनाना चाहा था, और जब उसने मनुष्य होनेका प्रयत्न किया तुमने उसे कुचल दिया ? क्योंकि वह मेरे साथ भागनेवाली थी ?' राजकुमार महेन्द्रवर्माने आगे बढकर कहा— 'ब्राह्मण होनेसे तुम अबध्य हो पुजारी। किन्तु ब्राह्मण आजतक पशुबलि देते थे तुमने नरमेध किया है। मैं आज उस धर्मके नामपर पूछता हूँ क्या वैष्णव-भक्तिमें पिता पुत्रीकी हत्या करके नही मर सकता ?' रङ्गभद्रकी ओर दिखाकर सम्राट् सिंहविष्णुने कहा—'यदि यह युवक सत्य कहता है

तो पुजारीका कोई दोष नही। उसने देवताकी सम्पत्तिको अपवित्र होते देखकर उसका ध्वम करके पवित्र भागवत धर्मकी रक्षा करदी। रत्नगिरि! बोलो, कहो, देवदासी अनाचारिणी थी?"

रत्नगिरिने अविचलित स्वरसे कहा—'यह युवक झूठ बोलता है। मैंने इसे कभीभी उससे बात करते नही देखा। देवदासी सदा अकलुष, पवित्र, और पुण्यसे भी मधुर थी। उसकी आत्मा प्रभातके नीहारकी भाँति उज्ज्वल कल्मषहीन थी।'

सम्राट् सिंहविष्णुने क्रोधसे कहा—'तब तू ब्राह्मण नही है रत्नगिरि, तू चाण्डाल है। अपनी पुत्रीको निष्कारण मारकर तू पत्थरकी तरह मेरे सामने खडा है। राजकुमार महेन्द्रवर्मा सच कहता है कि ब्राह्मणको अवध्य कहना धर्मका सबसे बडा दुराचार है।'

रत्नगिरिने कहा—'सम्राट्, रत्नगिरि पुत्रीकी हत्या करके अब ब्राह्मण नही रहा। वह हत्यारा है।'

इसी समय राजमाता धीरे-धीरे रत्नगिरिके सम्मुख आखड़ी हुई। उनकी आँखोंमें अश्रु छारहे थे जिनमे वात्सल्य और भयमिश्रित घृणा चमक रही थी। उन्होंने कहा—'पुजारी, सच कहो, पुत्रीको तुमने ही मारा है?'

पुजारीने कुछ जवाब नही दिया। राजमाता फूट-फूटकर रोउठी। उनका हृदय टुकडे-टुकडे होरहा था। उन्होंने कहा—'तुम रक्षक नहीं हो, तुम हिंस्र पशु हो। जन्मसे तुमने उसे पाला, फिर क्या इसी अन्तका तुमने उसके लिये निर्णय किया था? पैदा होतेही क्यो न मार दिया पिशाच? स्वर्गकी उस अमूल्य पवित्र प्रतिमाका तुमने अन्त करदिया, तुम्हे क्या मालूम मेरे हृदयकी वेदना ....'

उनका कण्ठ रुँधगया। पुजारीने उनकी ओर देखा। वह रोती रोती पीछे हटगयीं। आगे आकर कवि सिन्धुनादने कहा—'पुजारी, यह

तुमने क्या किया ? सच कहो, तुमने यह हत्या क्यों की ? तुम तो उसे लेकर काशी जारहे थे ! रत्नगिरि, तुमने क्या यही मित्रता दिखायी है ? आजीवन पवित्र रहे हो तुम ? तुमने स्त्रीहत्या ही नहीं की, तुमने देवदासीकी हत्या की है ! ब्राह्मण होनेके कारण तुम्हारी हत्या नहीं की जासकती, क्या इसीसे तुमने ऐसा किया ? आजतक तो तुमने कभी अपने अधिकारोंका दुरुपयोग नहीं किया ? क्या देवदासी पापिनी थी ?'

उस समय रत्नगिरिने दृढ स्वरसे कहा--'नहीं कवि !'

सिन्धुनादकी आँखोंमें आँसू छागये । उसने धीरेसे कहा--'तुमने सबसे बड़ा पाप किया है । तुमने अनेक हृदयोंपर ठोकर मारकर चूर कर दिया है । तुम मेरे मित्र हो । रत्नगिरि, क्या तुम अब जीवन-भर अपने इस भीषण पापकी ज्वालामें जीवित ही नहीं मर जाओगे ? कैसे सह सकोगे यह सब ब्राह्मण ? किन्तु तुम अब सबकुछ सह सकोगे वज्र-हृदय ! तुमने हत्या की है। तुमने विश्वासघात किया है। तुमने इस वृद्धका हृदय बिल्कुल ध्वस्त करदिया है । क्या चिताकी भस्मको अपने पापी नयनोंसे घूर रहे हो ? रत्नगिरि यह तुमने क्या किया !'

पुजारीने नीचेका होंठ दाँतसे काटलिया और चुपचाप खड़ारहा ।

सम्राट् सिंहविष्णुने कहा--'ब्राह्मणको राजमन्दिरसे बाहर निकाल दो, उसको पल्लव साम्राज्यसे निर्वासित करदो । मैं आज्ञा देता हूँ कि पल्लव का एकभी नागरिक, सैनिक अथवा जो कोईभी हो ब्राह्मणको एक मुट्ठी अन्न न दे, एक बूँद पानी न दे, और इसके पापसे पूर्ण मुखको देखकर चिल्ला उठे--नारायण ! नारायण !!'

समस्त समुदाय पुकारउठा--'नारायण ! नारायण !!'

सम्राट् सिंहविष्णुने फिर कहा--'मन्दिरको यज्ञसे पवित्र करना होगा। यहाँ ब्राह्मणके वेशमें एक चाण्डाल रहता था । इसे निकाल दो ।'

रत्नगिरि धीरेसे मन्दिरके बाहर निकलगया। सहस्रों हृदय एक स्वरसे उसे धिक्कार उठे।

—८—

उस समय मन्दिर निर्जन होचुका था। निस्तब्धता सनसनारही थी। नागरिक समुदाय अपने अपने घराको लौटचुका था। दीप बुझचुके थे। घोर नीरवता छारही थी। स्तम्भके सहारे खडे युवककी तन्द्रा टूटगयी। वह धीरे धीरे बाहर आया और पेलार नदीकी ओर चलपडा।

प्रभातका मधुर प्रकाश सिकतापर डोलनेलगा। धीवरोंकी वशी की करुण लहरियाँ सिन्धु-मिलनकेलिए अधीर ऊर्म्मियोंपर फहरने लगी। सहसा युवकने पोतपर चढकर पुकारा—'कदम्ब!' सेवकने झुककर कहा—'प्रभु?'

'हमारे पास कितने पोत हैं?' युवकने अविचलित स्वरसे पूछा।

'चौबीस, प्रभु!' सेवकने विनीत उत्तर दिया।

'उनकी सम्पत्ति बॉटदो कदम्ब! काञ्चीकी भूखी प्रजाको वह सब दान करदो।'

'प्रभु!' कदम्बने विस्मयसे कहा।

'विस्मय न करो कदम्ब! आज महाश्रेष्ठि रङ्गभद्र प्राणोंका व्यापार करने सिहल जारहा है। जिस मोतीको खोजने वह महासमुद्रमे गोता मारने जारहा था, वह उसे भीषणसे भीषण समुद्रका मन्थन करकेभी अब नही मिल सकता।'

'प्रभु!' सेवकने फिर निवेदन किया—'स्वामीका चित्त आज कुछ अस्थिर है।'

'नही कदम्ब! रङ्गभद्र अब कभी विचलित नहीं होसकता। जिस

धनको मैं आज एकत्रित करने जारहा था आज उसी धन और अधिकार के मदने मुझे आमरण जीवितही जलनेका महान् वरदान दिया है। रङ्गभद्र कभीभी अब काञ्चीकी अभिशप्त नगरीको नही लौटेगा। पल्लव साम्राज्य का यह भीषण नरमेध आज पाषाणोंके चरणोंको अपने रक्तसे रँगचुका है। मैं इससे घृणा करता हूँ कदम्ब! मैं इससे जी भरकर घृणा करता हूँ।'

कदम्ब चलागया। युवक थोडी देरतक खडारहा और फिर सहसा ही पुकार उठा—'माँझी, पोतको बहने दो।'

कठोर मास-पेशियोवाले नाविकोकी पतवारोंने अथाह नदीकी लहरों को काटना प्रारम्भ किया। फेन उठकर पोतके किनारेपर छींटे मारनेलगे। अकेला पोत सागरकी ओर बहचला। निराधार, अनन्त जलराशिपर डग-मगाता, काँपता, भयभीत होता। पाल हवासे भरकर फैलगये। उज्ज्वल प्रकाश लहरोंपर भागने लगा। तीर दूर छूटगये। पोतकी गति तीव्र होने लगी।

रङ्गभद्र एक बार जोरसे हँसउठा और फिर सिर थामकर अर्द्ध-मूर्छित-सा बैठगया। वह न-जाने कौनसा मोती ढूँढने जारहा था! चारों ओर महानदका ऊर्म्मिजाल अट्टहास करउठता था और ऊर्ज्जस्वित प्रति-ध्वनि आकाशमे मॅडराने लगती थी।

प्रवाहपर पोत मन्थर गतिसे बहा जारहा था। दूर सुदूर केवल जल-राशिके अतिरिक्त आज चारोंओर कहीभी कुछ न था। क्षितिज जैसे सन्निपातमे कुछ मर्मर कररहे थे, और रङ्गभद्र बैठा रहा, बैठा रहा, विश्रान्त पराजित, विध्वस्त अवसादका टूटा हुआ स्तम्भ अभिलाषाओंकी धधकती भस्मका उन्माद।

अनुवर्त्तिनी

[१]

वृद्ध कौत्सुभने उद्वेलित होकर पूछा—'अरे क्या हुआ कुछ मुझे भी तो बताओ ? अरे कोई कुछ बताता क्यों नही ?'

'कौन ? कौत्सुभ भिक्षु तुम हो ?' सघस्थविरने चलते-चलते रुक कर कहा—'आज विजनतीगाके सघका नाम फिरसे चमकउठा है।'

पास खडे युवक भिक्षु अनागारिकने चिल्लाकर कहा—'मेधावी आनन्द भिक्षु विजयी हुए हैं। उनकी अद्भुत वाक्शक्ति, प्रचुर प्रमाण, अकाट्य तर्कसे बालनाथकी समस्त योगसिद्धि ऐसे उड़गयी जैसे खरके सिरसे सीग।'

'आनन्द जीतगये ?' वृद्धने गद्गद् होकर कहा—'जीतगये आनन्द! भगवान्, तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए! सघस्थविर, आर्य्यसघका नाम अमर है।'

सघस्थविरने कहा—'आनन्दपर सघको गर्व है भिक्षु कौत्सुभ! वह मेरा शिष्य है। वह प्रकाण्ड मेधावी है। जिस समय आनन्द बोलने को खडाहुआ एक ओर वज्रयानके महासुखवादी सिद्ध, दूसरी ओर गोरक्ष के अनुयायी योगी बैठे थे। उन्होने बहुत-कुछ कहा। सिद्धोने प्रज्ञा और उपायको बखेरदिया। शून्य, विज्ञान और महासुखके विवेचनसे जनसभा को मन्त्रमुग्ध करदिया। ध्यानी बुद्धो, बोधिसत्त्वों, युगनद्ध स्वरूपोसे उन्होंने सबकुछ एकदम सिरमे उतारदेना चाहा। इन पतितोमे कुछ जो शैव हो गये हैं, उन्होंने भी बहुतकुछ प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया किन्तु न

सङ्गमतन्त्र काम आया, न साधना ही। वे केवल अशिक्षित मूर्खों को परास्त करसकते हैं। आनन्दने जब बोलना प्रारम्भ किया एकदम नीरवता छागयी। उसने कहा— अन्तस्साधना, अन्तस्साधनाका मार्ग बाह्य-आडम्बर नही है। तुम शरीरको कष्ट देकर समझते हो कि आत्मा पवित्र होरही है? तुम गुणीके स्थानपर गुणका प्रयोग न करके क्रिया-व्यापारको सूक्ष्म और स्थूलमे विभाजित करनेका प्रयत्न करते हो? भिक्षु कौत्सुभ, उस समय सभामे ऐसा कोलाहल मचा जैसे किसीने समुद्रका मन्थन कर दिया हो। आनन्द फिरभी बोलतारहा। मैंने उसे वेदान्ती माधव मिश्र से भी शास्त्रार्थ करते देखा है। किन्तु नहीं, भिक्षु, वह कुछभी नहीं था। आज तो ऐसा खण्डन किया उसने कि मुझे महाप्रभुके प्रथम शिष्य आनन्द की आभा उसके चारो ओर फूटतीहुई दिखायीदी। मुझे आनन्दपर गर्व है, आर्य्यसघको कृतज्ञ होना पड़ेगा उसका। उसने आज गौतमके नाम पर कलक नही आनेदिया।'

वृद्ध कौत्सुभने आनन्दसे विह्वल होकर कहा—'सघस्थविर, गौतम के इन बननेवाले अनुयायियोने कितने भयानक पाप किये है। आज जब कि सब जगहसे प्रायः हीनयान मिटगया है विजनतीराके सघमे हम अब भी पवित्र हैं। आर्य्यावर्त्तको विदेशियोंने सहस्रो वर्षोंसे विच्छिन्न करदिया है। विभिन्नधर्मा आज धर्मकी ओटमे अनाचार फैलारहे हैं। कहते हैं सुदूर सागरतीरपर पश्चिममे यवन विजयी होकर अब अपने धर्मका बलपूर्वक प्रचार करनेलगे हैं। उत्तरसे अनेक अभियान करके भी उनका बल अभी ठण्डा नही हुआ। राजपुत्र परस्पर युद्ध कररहे हैं। गौतमको लोग भूलते जारहे हैं। प्राचीनावीति कहकर जनसमाज सबकुछ खोता जारहा है। आर्य्य, आर्य्यावर्त्तमे लोग एक-दूसरेको अब आर्य्य भी नही कहते।

सघस्थविरने कहा—'वृद्ध भिक्षु, गौतमका आशीर्वाद चाहिए। सबकुछ फिर प्राप्त होगा। खोयाहुआ लौट आयेगा। आज जो प्रशस्त

ललाट धीरे-धीरे उठरहा है उससे फिरसे राजा और प्रजा बौद्ध होगे। चक्रवर्ती सम्राटोकी छत्रछायामे आर्य्यावर्त्त फिर बौद्धोंका केन्द्र होजायेगा। वह देखो भिक्षु आनन्द आगया।'

तभी आनन्दने आकर प्रणाम किया। कौत्सुभने गद्‌गद् होकर आशीर्वाद दिया—'वत्स, तुम्हारी सदा जय हो।'

'महापण्डित बुद्ध भिक्षुके रहते मुझे कोई भय नहीं'—आनन्दने नम्र होकर कहा।

सघस्थविर मुस्करादिये।

[२]

उन दिनो आर्य्यावर्त्तकी शक्ति विभिन्न सामन्तोंके हाथमे खड खड होकर उच्छृ खल होउठी थी। पश्चिमके कुछ साधू आकर अपने अनोखे उपदेश देते फिरते थे। नित्य ही गोरखपन्थी और भैरवी साधुओंका उनसे समागम होता और वे साथ बैठकर खाते, साथही मदिरा पीते, समझ न आनेवाली बाते कहते और प्रजा उनसे भयभीत होकर बात-बातमे उनके सामने सिर झुकादेती। देशमे तीन ही वर्ग प्रधान थे। एक प्रजा, दूसरा राजवशीय समुदाय, तीसरे यह साधू जो व्यक्तिगत महानिर्वाणकी खोजमे पागल होरहे थे। भैरवीचक्रो और हठयोगियोंकी समाधियोको लोग सुनते और श्रद्धा करते थे। दुर्दमनीय गिरि-कन्दराओमे युवक बैठकर बलि देते, उनकी धूनीकी लपट आकाशको चूमने लगती और उस उन्मादमें वे स्त्रियोंकी योनि - पूजा करते। दर्शन और अभ्यासके इस अन्धकारमूल वितण्डावादमे आर्य्य सस्कृतिकी जड़े हिलरही थीं। दक्षिणमे उस प्रबल शक्तिसे दिग्विजयी शङ्करका गम्भीर गर्जन उठा था कि बौद्ध धर्म लड़खड़ा गया था। यवनोंके आक्रमणकी दिन-पर-दिन आशङ्का बढती जारही थी। अपार धनराशि लिये बौद्धोके सघाराम नगरके बाहर भविष्यकी काली

छायामे कॉपतेहुए 'अबभी कनिष्क और अशोकके भग्न स्तूपोंमे तथागतका नाममात्र दुहरालेते थे ।

विजनतीरा नदीके किनारे ऊँघताहुआ वह संघ सन्ध्याकी डूबती छायाओंमे रङ्गबिरङ्गा बहुतही मनोहर-सा दीखरहा था । बाहरही विशाल फाटकपर प्रस्तरकी मूर्त्तियॉ समयको देख स्तब्ध होगयी थी, मानों उन्होने उसे निर्भय होकर काटदिया था । अधेड़ आयुके संघस्थविर बुद्धभिक्षु बाहर खडे कुछ सोचरहे थे । उनके पासही आनन्दभिक्षु खडा था ।

'बातमे उसकी कुछ सार अवश्य है आनन्द'—कहतेहुए बुद्धभिक्षु ने आनन्दकी ओर देखा ।

'आप सोच सकते हैं ऐसा आर्य्य ? मुझे तो कुछ समझ नहीं पड़ता । वज्रयानकी यह अद्भुत पिपासा मुझे कभी सन्तुष्ट नहीं करसकी । शून्यको विभाज्य रूप देनेसे क्या हम अन्तरात्माको धोखा नही देते ?'—आनन्दने आकाशकी ओर देखते हुए कहा । संघस्थविर मौन रहे । आनन्द ने फिर कहा—'देव, प्रच्छन्न बौद्धके मिथ्या प्रचारसे अनेक ब्राह्मणोको नये-नये उपाय सूझनेलगे हैं । नगरमे एक यवन आया है जो अनेक उल्टी-सीधी बाते कहता फिरता है । वह तो सिद्धोसे भी बढगया है । मै कुछ नही समझ पाता ।'

उसकी उत्तेजना देखकर संघस्थविर हॅसदिये । उन्होने कहा—'आनन्द तुम अभी युवक हो ।'

आनन्द बिल्कुल नही समझा । उसके सोनेके-से दमकते रङ्गपर काषायका वर्ण प्रफुल्लित होरहा था । कठोर संयमसे उसका मुख दमदमाता था जिसपर सौम्य क्षमाका आर्य्यमौन उसे बहुतही मनोहर बनादेता था । एकाएक उसने एक सुन्दरी युवतीको अपनी ओर आते देखा । आनन्दने कहा—'देव, कोई स्त्री यहॉ आरही है ।'

संघस्थविरने देखा। स्त्रीने आकर प्रणाम किया।

संघस्थविरने पूछा—'शुभे, तुम कौन हो? यहाँ किसलिए आई हो?'

'दीक्षा लेने आयी हूँ प्रभु। मैं विधवा हूँ'—स्त्रीने उत्तर दिया।

'गौतमके संघमे स्त्रियोंकी गणना अधिक होती जारही है, आर्य्ये! तुम भिक्षुणी होकर क्या करोगी?'

'मैं अपने वैधव्यका अन्धकार सयमके महाप्रभातमे हीरेकी तरह चमकताहुआ देखना चाहती हूँ प्रभु।'

'नारी!'—संघस्थविरके नयनोमे एक कठोरता छागयी—'तुम मुण्डित-केश अलकारविहीन करदी जाओगी।'

'शिरोधार्य्य'

संघस्थविरने आनन्दकी ओर देखा। आनन्दका कुन्दन-सा मुख गम्भीर था। वह स्त्रीकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखरहा था। स्त्रीका प्रस्फुटित यौवन मचलरहा था, जैसे नदी उफनकर बहजाना चाहती थी। उसके नीले दुकूलपर वह सफेद कञ्चुक कालिन्दीपर कॉपते कमलोंकी भॉति था जिसे छू-छूकर समीरण अङ्गडाई भररहा था। स्त्रीने आनन्दको देखकर सिर झुकालिया।

संघस्थविरने कहा—'वत्स आनन्द, भिक्षु कौत्सुभके पास लेजाकर इसे दीक्षा दो।'

आनन्दने आज्ञाको सिर झुकाकर स्वीकार करलिया। स्त्री उसके पीछे-पीछे चलनेलगी। आनन्दने मुडकर पूछा—'आर्य्ये तुम्हारा नाम?'

स्त्रीने कहा—'देव, मेरा नाम नन्दिनी है।'

'किसकी पुत्री हो?'

'मेरे पिता स्वर्ग चलेगये। मेरा पालन मेरी माताने ही किया है।

किन्तु जब वे भी चलबसी, ससारमे मेरा कोईभी सहारा नही रहा, तब मैं गौतमकी शरणमे आयी हूँ।'

भिक्षुकी उत्सुकता बढती जारही थी। उसने फिर पूछा—'आर्य्ये, क्या तुम्हारे पतिके सम्बन्धियोने भी तुम्हे सघमे सम्मिलित होनेकी स्वीकृति देदी है?'

स्त्रीने उत्तर दिया—'आर्य्य, नन्दिनीने अपने पतिका मुख भी नहीं देखा। जब वह छोटी थी तभी उसका विवाह एक दस वर्षके बालकके साथ करदिया गया था। माता तब पाटलिपुत्रमे थी। एक दिन श्रेष्ठि सुदत्तके घरसे लौटते समय सुना कि मेरे पतिके घर कुछ दस्युओंने आक्रमण किया और तभी मेरे पति चलेगये। कहते हैं उस दस वर्षके बालककी वहीं हत्या करदी गयी। माँने तभीसे मुझे विधवा कहा है। उच्च कुलकी मर्यादा पालनेका मैंने अपनी माताको उसकी मृत्युशैय्यापर हाथ रखकर वचन दिया है।'

आनन्दभिक्षु विचार-मग्न होगया। जैसे उसका हृदय किसी घोर चिन्तामे डूबगया। जब दोनो भग्न स्तूपके पार सरोवरके तीरपर पहुँचे उन्होंने देखा नेत्रहीन वृद्ध कौस्तुभ कुछ गारहा था। आनन्दने सुना वह अश्वघोष के बुद्ध-गृहत्यागके महावैराग्यके गीत गारहा था। उसका हृदय एकदम शान्त होगया।

उसने प्रणाम करके कहा—'आर्य्य, सघस्थविरने देवी नन्दिनीको प्रव्रज्या ग्रहण करनेको आपके पास भेजा है।'

वृद्धने कहा—'कौन? नन्दिनी? शुभे, मेरे पास आओ।'

वृद्धने स्नेहसे कहा—'यह केश नही रहेगे, यह अलकार नहीं रहेगे। न चन्दन लगा सकोगी, न अङ्गराग, न आलक्तक, न कानोमें कुसुम खोंस सकोगी, न ...'

नन्दिनीने काँपते स्वरमे कहा—'भिक्षु, मैं तो अबभी यहसब नही

करसकती। मैं विधवा हूँ।'

'किंतु मन वशमें रख सकोगी?'

'प्रयत्न करूँगी भगवन्!'

वृद्ध हँसा। उसने कहा—'आर्य्ये, गौतमने कहा था कि स्त्रियाँ सघमे आकर सघकी आयु घटारही हैं, किन्तु जो भगवान् बुद्ध नही रोक सके वह मैं अन्धा, आँखसे ही नहीं मनसे भी, कैसे रोकसकता हूँ? आओ, मैं तुम्हे प्रव्रज्या ग्रहण कराऊँगा। आजसे तुम अनुवर्त्तिनी हो। बुद्ध शरणं धम्म शरण, सघ शरण गच्छामि!'

नन्दिनीने नम्रतासे शीश नत करलिया। आनन्द चुपचाप देखता रहा। सन्ध्याके धूमिल वसन गहरे होचुके थे।

[२]

आकाशमे नारगी उजाला फैलनेलगा। उन्मत्त समीरण नन्दिनी के मुखपर बजउठा। उसने अपने उडते काषायको हाथसे थाम लिया। अन्धे भिक्षु कौत्सुभकी पुकार गूँजउठी—'अनुवर्त्तिनी!'

'आयी बाबा'—कहतेहुए नन्दिनीने पास जाकर उसकी लाठीको थामलिया।

भिक्षुने कहा—'अनुवर्त्तिनी, सघका वातावारण तुझे कैसा लगता है बेटी?'

अनुवर्त्तिनीने कहा—'देव, मेरा हृदय शान्त है, मेरी भावनाएँ स्थिर हैं और मेरा चित्त अकलुष है।'

वृद्धने प्रसन्न होकर कहा—'भगवान् बुद्ध तेरी रक्षा करें!'

अनुवर्त्तिनी उसके पाससे चलपडी। स्तूपके पीछे भूमिपर कुछ लकीरें खींचकर आनन्द भिक्षु गणना कररहा था। उसके विशाल मस्तकपर चिन्ता

की हल्की लहर सिकतापर मानो अपनी पदरेख छोड़गयी थी। अनुवर्त्तिनी उसे देखकर रुकगयी। आनन्द अपने आप कहउठा—'यदि गणना सत्य है तो सघका ध्वस अब दूर नही है। नालन्दका जोभी ज्ञान अबतक सुरक्षित रहसका है उसका अन्त होनेमे विलम्ब नही रहा।'

अनुवर्त्तिनीने आगे बढकर कहा—'आर्य्य, सघका ध्वंस! क्या कह रहे हैं आप ?'

'मैं झूठ नहीं कहता अनुवर्त्तिनी'—भिक्षु आनन्दने अपने दीप्त मुख को उसकी ओर मोडकर कहा, 'गणना, नागार्जुनकी विद्या कभी मिथ्या नही होसकती।'

'गणना ?'—अनुवर्त्तिनीने शङ्कित स्वरमे पूछा, 'आप मेरा भविष्य बता सकेंगे ?'

आनन्दभिक्षुने उसे बैठनेका सकेत करके कहा—'अपना बॉया हाथ दिखाओ।'

नन्दिनी बॉया हाथ फैलाकर बैठगयी। एकाएक हाथ परसे दृष्टि उठा कर उसके मुखपर गड़ातेहुए आनन्दने कहा—'आर्य्ये, तुम तो विधवा नही हो। फिर यह कैसा छल ?'

नन्दिनी कॉपउठी। उसने करुण स्वरमे कहा—'आर्य्य, उपहास भी तो इतना निर्दय!'

आनन्दभिक्षुने गम्भीर स्वरमे कहा—'आर्य्ये भिक्षु आनन्द स्त्री तो क्या पुरुषसे भी उपहास नही करता। वह अनेक मेधावियोंको दिनमे दीपक जलाकर परास्त करचुका है। किन्तु तुम विधवा नही हो। मैं गौतमकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि गणना सत्य है, सामुद्रिकशास्त्र सत्य है तो तुम विधवा नही हो।'

नन्दिनी कुछभी नही सोचसकी। वह उठकर खडी होगयी। एक

बार उसने आकाशकी ओर शून्य दृष्टिसे देखा। आनन्दभिक्षुने देखा जैसे नीले आकाशमें नवीन शतदलोंकी स्थिर निर्वात सृष्टि-सी होगयी। नन्दिनी चिन्तामग्न चलपड़ी।

सघस्थविर ध्यानमें मग्न बैठे थे। उनका पकाहुआ शरीर ताम्रवर्ण का होगया था। नन्दिनी सामने जाकर श्रद्धासे शीश नतकर बैठगही। जब सघस्थविर बुद्धभिक्षुके नयन खुले उन्होंने देखा नन्दिनी सम्मुखही प्रणाम कररही थी। सघस्थविर देरतक देखतेरहे। आज उनके हृदयमें कामनाओं के वृक्षके न-जाने कहाँसे पत्ते निकलकर खडखडाउठे। उन्होंने मन-ही-मन त्रिपिटकका स्मरण किया। नन्दिनीने कहा—'आर्य्य, चित्तका विकार दूर करनेका सयम इतना दुख क्यों देता हे जब उसका परिणाम केवल पवित्र शान्ति और सुख है ?'

सघस्थविरने कहा—'वत्से, सघर्षसे जन्म होता है। मनुष्य जैसे करवट बदलकर ही नींदमें पूरा विश्राम पाता है और वह करवट उसे एक श्रम-सी प्रतीत होती है इसी प्रकार दुख हमें केवल दिखायी देता है। इस दुखकी निवृत्ति ही मनकी वास्तविक शान्ति है।'

नन्दिनीने फिर कहा—'देव, मनुष्यके जीवनकी चरम सात्विक वृत्ति क्या है ?'

सघस्थविरने विचलित स्वरको दबातेहुए कहा—'सम्यक् ज्ञानका सम्यक् क्रियासे सम्यक् मिलन कराना ही जीवनको सुचारु पथपर अग्रसर करना है।'

नन्दिनी उठगयी। सघस्थविरने फिर ध्यान लगानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल रहे। उन्होंने एकबार चारोंओर देखा और फिर कॉप उठे। दूर नन्दिनी सिर झुकाये चली जारही थी।

[४]

सन्ध्याके धूमिल अन्धकारमे चैत्योपर दीपक जलनेलगे। तथागत की विराट् सौम्य मूर्त्तिके सम्मुख अनेक दीपाधारोमे आलोक पुजीभूत होकर जगमगाउठा। अगरुधूमकी कॉपती लहरे स्नायवित कम्पनमे झूमनेलगी, घण्टे और शङ्ख बजनेलगे।

सघारामके एक प्रकोष्ठमे सघस्थविर बुद्धभिक्षु बैठे कुछ ध्यान कर रहे थे। धुँधला दीपक जैसे सिर उठाकर अन्धकारको देख-देखकर सिहर उठता था। एक ओर तालपत्रपर लिखी पुस्तके रखी थी। बुद्धभिक्षुका हृदय आज कुछ अस्थिर था। कई बार प्रयत्न करनेपर भी वह ध्यान नही लगा सके। उन्होने देखा, दूर उपासिकाएँ चली जारही थीं। वे गौरसे देखनेलगे। अन्तमे उन्होने देखा, प्रशान्त गम्भीर नन्दिनी धीरे-धीरे चलरही थी। भिक्षुणी होकर भी उसकी चालकी मादकता कम नही हुई थी, क्योंकि यौवनके दो दुर्ग अपने वैभवके उफानमे मथर आवाहनमे झूमउठते थे। उसके मासल शरीरसे प्रभा फूटरही थी। एक क्षणकेलिए सघस्थविरके हृदयमे एक चौधियाती ज्वाला सुलगउठी।

उन्होने उठकर बाहर बैठे भिक्षुको बुलाकर कहा— 'जाओ, भिक्षु आनन्दको बुलालाओ।'

भिक्षु चलागया। सघस्थविर व्याकुल-से घूमनेलगे। उनकी छाया दीवारोपर कॉपनेलगी। थोड़ी देर बाद भिक्षु आनन्दने आकर प्रणाम किया।

सघस्थविरने बिना उत्तर दिये पुकारा—'आनन्द।'

'देव!'—आनन्दने नम्र स्वरमें कहा।

सघस्थविर शान्त होगये, उन्होंने कहा—'वत्स, आर्य्यसघको नित्य चुनौतियाँ दीजारही हैं। तक्षशिलासे खबर आयी है कि अनेक भिक्षुओ ने चीवर त्यागदिया। वे लोग अपनी प्रसन्नतासे स्मार्त शैव होगये है। ऐसे समयमें हमे क्या करना चाहिए? सघको किसी प्रकार बचाना होगा।

भगवान् गौतमके अनुयायी आज अपने अन्तःकरणके सम्मुख भयानक-से-भयानक पाप करते नहीं हिचकते ।'

भिक्षु आनन्दने देखा संघस्थविर व्याकुल होउठे थे। उसने कहा—'आर्य्य, मैं दस वर्षकी आयुसे ही माता-पितासे छीनलिया गया था। मुझे नहीं मालूम मेरे माता-पिता हैं या नहीं। श्रेष्ठि धनदत्तने मुझे गोद लिया था। तबसे मैं संघकेलिए दान करदिया गया हूँ। आज मुझे संघ मे रहतेहुए चौदह वर्ष बीतगये हैं। मैंने विद्याओंका मन्थन किया है। आपने अपने हाथसे मुझे ज्ञानका नवनीत खिलाया है। आजतक आपने बडे बडे वैष्णव, शैव अथवा विभिन्नधर्मासे हँसतेहुए मुझे शास्त्रार्थ करने भेजा था। आपके विश्वासका प्रबल श्वास ही मेरे प्रतिद्वन्द्वीकी टिमटिमाती दीपशिखाको बुझादेता था और दीपककी निर्जीव धूमराशिको उठते देख कर सब हँसदेते थे। आर्य्यसंघके प्रबल चालक यदि शत्रुको देख भयसे काँपउठेंगे तो आर्य्यावर्तमे वह आग लगेगी कि गौतमका प्रत्येक अनु-यायी प्रत्येक मठ भस्ममे मिल जायगा। क्षमा करें देव, मैंने विजनतीरा के प्रबुद्ध संघारामके महायशस्वी, आयुसे अधिक ज्ञानी, प्रकाण्ड मेधावी सौम्य, सत्यवादी, संयमी संघस्थविर बुद्धभिक्षुको कभीभी चलती हवामे काँपते पत्तेकी तरह नहीं देखा था।'

'भिक्षु ··!' संघस्थविर चीखउठे। किन्तु आनन्द कहतागया, 'भिक्षुके तनका ध्वंस एक प्राकृतिक नियम है, किन्तु मनका ध्वंस एक अनाचार है, मारके अन्धकारकी विजय है।'

संघस्थविरने कुछ नहीं कहा। वह बाहर देखनेलगे। उपासिकाएँ लौटरही थीं। संघस्थविरकी दृष्टि कहीं अटकगयी। आनन्दने देखा—वह अनुवर्त्तिनी थी। नन्दिनीने एक बार भगवान् बुद्धकी महान् मूर्त्तिको सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर उपासिकाओंमे मिलगयी जैसे अगरुधूम की लहरे आपसमें घुलमिल जाती हैं।

आनन्द मन-ही-मन उन्मत्त-सा हिलउठा। आज उसके मस्तिष्क मे एक नया प्रहार होरहा था। नन्दिनी! भिक्षुके सयमका सारा ममत्व क्षण-भर उपेक्षाकी ठोकरसे निर्जीव सा पीछे हटगया। चौबीस बरसका वह रुकाहुआ यौवन थपेडे मारकर अन्तस्तलके किसी कोनेमे पुकारउठा। सघस्थविरकी व्याकुल दृष्टिमे वह तृष्णा देखकर आनन्दका मन विक्षुब्ध होउठा।

उसने कहा—'आर्य्य!'

संघस्थविरने धीरेसे कहा—'वत्स!'

आनन्दने धीरेसे कहा—'भगवन्! आपका हृदय ·· '

सघस्थविर एकाएक मुडकर खडे होगये। उन्होंने आनन्दको कठोरतासे देखा। किन्तु आनन्दने बिना हिचकिचाये कहा—'देव, प्रलोभन ही प्रकाशका क्षय है।'

'तुम मुझे शिक्षा देरहे हो बालक?' सघस्थविरने चौककर कहा।

'प्रभु मैं बालक हूँ।' आनन्दने झुककर कहा।

सघस्थविर क्षण भर मौन रहे। फिर उन्होने ही कहा—'आनन्द, तुम जाओ। मुझे सोचने दो। सघकी रक्षा करनी होगी। शत्रु बढ़ते जा रहे हैं।'

आनन्दने कहा—'आर्य्य, मनुष्य अपने भीतरके शत्रुसे सबसे अधिक भय खाता है, क्योकि पतवार टूटजानेपर कोई नाव जलको नही काट सकती वह केवल लहरोकी दयापर झटके खाती है।'

और वह उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही तेजीसे बाहर चलागया। संघस्थविर उद्भ्रान्त-से, मोहाकुल-से जड़ीभूत बैठे शून्य दृष्टिसे आकाशकी ओर देखतेरहे। द्वारमेसे नीला अन्धकार, उसपर तारे सब काँपरहे थे। सघस्थविरने विचलित होकर आँखोको बन्द करलिया।

[५]

मेघोंका गम्भीर गर्जन रात्रिकी सनसनाती निस्तब्धतामे व्याप गया और देरतक सघाराम गूँजतारहा। सघस्थविर व्याकुल-से प्रकोष्ठमे टहलनेलगे। दीपक हवासे बुझगया। उन्हे कुछभी ज्ञात न हुआ।

मनने कहा--बुद्धभिक्षु तुमको क्या हुआ? तुम जीवनके आदर्श को इतना नीचे गिरागये? मैं समझता था अनुवर्त्तिनीके मोह-जालमें साधारण भिक्षु कुरगकी तरह हतचेत होकर फँस जायगा किन्तु भदन्त बुद्धभिक्षु!

किन्तु तभी कोई कहउठा—कमलको पानेकेलिए कीचडमे पॉव देना क्या कोई पाप है?

सघस्थविर बैठगये। लोभ गम्भीर भावसे हँसनेलगा।

सघस्थविर फिसला है किन्तु वह सँभलेगा भी, क्योंकि गौतमका आशीर्वाद यही पुकाररहा है। किन्तु रोग तो साधारण नहीं है। मृत्यु ही एकमात्र उपाय है।

सघस्थविर मुस्करा उठे।

और जो यह समझते हैं कि आकर्षण पाप है वह अपने आपको धोखा देते हैं। लेकिन मैं नन्दिनीसे प्रेम करसकता हूँ? सघस्थविर जोर से कहउठे। स्वर वर्षाकी ध्वनिमे गिड़गिड़ाने लगा। वह और उत्तेजित होकर कह उठे—मनुष्य करनेको क्या नही करसकता? क्या नन्दिनी मेरी नही होसकती? होसकती है, होसकती है!

पापकी विकराल छाया समस्त नदीपर छाकर बाढ लेआयी। और सघस्थविर उन्मादमे भरकर प्रकृतिकी अभिसार-लीलामे अट्टहास करउठे। प्रकोष्ठका अङ्ग प्रत्यङ्ग गूँजउठा और प्रतिध्वनि करता अन्धकार भी हँसने

लगा, अट्टहास करनेलगा। कुछ देरको वह सबकुछ भूलगये। उन्होंने मौन होकर सुना, स्वर अबभी गूँजरहा था। उनकी आँखोके सामनेसे नन्दिनीका रूप चलउठा। वे विशाल नयन जिनके कोनोंमे लाज-भरी अँगडाई लेती ललाई मासल कमलो-सी पँखुडी खोलकर आलोक फैला देती थी उन्हे अन्धकारमे मानो देखनेलगे। वह मादक विह्वल अङ्गस्पर्श का सुख उन्हे विपसे भरगया। बिजली कौंधउठी।

किन्तु, सघस्थविरने कहा--बुद्धभिक्षुने भी कभी प्रेम किया था? काषायमे वैराग्य है प्रेम नही। प्रेम है किन्तु सूर्यके प्रकाश-सा। ऐसी अनुवर्त्तिनीके स्थान करोडो अनुवर्त्तियोंको अपनानेका, पथ-प्रदर्शित करनेका भार उनपर आर्य्यसघने डाला है।

सघस्थविर फिर हँसपडे।

मै अपनेको धोखा देरहा हूँ। चाहे मोह, चाहे वासना, चाहे पाप, अथवा कुछभी हो बुद्धभिक्षु एक नारीके मासल पयोधरोको देखकर व्याकुल होउठा है। इस नश्वर अणुभाण्डकी एक मनोहर स्वर्गिक कल्पना!

संघस्थविर फिर उद्भ्रान्त-से घूमनेलगे। उन्होने कहा--कबतक अपनेको बहलाओगे भिक्षु? तुम नन्दिनीके मोहमे फँसगये हो, किन्तु तुम्हारा दम्भ तुम्हे भीतर-ही-भीतर खारहा है। सत्य सत्य ही है, और यदि सत्य को झुठाया जासकता है तबभी सत्यका एक रूप दूसरे रूपसे ढँका नहीं जासकता। सघस्थविर चुप होगये। उन्होने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। अन्धकार ठण्डसे सिसकरहा था। बिना साँस लिये नभसे जलधर अविराम मूसलाधार वर्षा कररहे थे। पृथ्वीपरसे छींटे उछलरही थी। कभी कभी बिजली चमकजाती थी। प्रकोष्ठमे भी सीलन थी। ठण्डी हवाके झोके भीतर घुस-घुस आते थे। उनमे एक चिपकनापन था।

एकाएक वासनाने अवगुण्ठन खींचकर कहा--नन्दिनीका सौन्दर्य

बुद्धभिक्षुको प्रिय नही, उसका वह मादक यौवन प्रिय नही। उसे चाहिए केवल नन्दिनी।

पुराने सघमने मुँह फेरकर पूछा—तब किसलिए भिक्षु ?

क्योंकि मन उसे चाहता है।

और किसी उपासिकाको नही चाहता ? नारीके प्रति लोभ ? आलिङ्गनकी मादक तृष्णा, पल - भर शरीरसे शरीर सटाकर ऊष्मामे झूम जाना, त्यागके शवपर चुम्बन करना, यहीसब तुम्हारी प्यास है भदन्त बुद्धभिक्षु ? माताके गर्भसे जन्म लिया था अनजाने। विद्या पटी, विवाह किया। अनिद्य सुन्दरी पत्नीके स्वर्गवास होनेपर शारीरिक विश्वकी मोह-जडित नश्वरता देखकर तुम यौवनमे अपने आप भिक्षु बने थे। उसके बाद आजतक तुम स्त्रीको भूलेरहे। फिर आज इतने वर्ष बाद यह आग क्यो धधकउठी जिसके कसैले धूम्रसे सघ घुटकर मरजायगा ? आज तुम मे यह प्यास क्या जागउठी ?

सघस्थविरने देखा। सामने मार खडा था। पीछे गौतमका हाथ अभय देरहा था।

बिजली कडकने लगी। विष अमृत बनकर कण्ठमे उतरगया। प्रकाश सोरहा था, हेलचल सोरही थी। सघस्थविर पुकारउठे— बुद्ध शरण, धम्म शरण, सघ शरण गच्छामि।

अन्धकार निर्मल होगया। पापकी भीषण प्राचीर ढहगयी। सघ-स्थविर चौंकउठे। यह वह क्या सोचरहे थे ? क्या कहते समस्त आर्य्य-सघके भिक्षु कि बुद्धभिक्षु एक नारीके अङ्कमें धँस जानेकेलिए सबकुछ भूलगया जैसे कीडा अन्धकारमे घुसजाता है। यह वह क्या कररहे थे ? इस वृद्धावस्थामें यह किस जन्मका पाप अचेतन बनकर उन्हे पतनके महा-खड्डमे लिये जारहा था ?

वे उठे और बुद्धके मन्दिरकी ओर चले। पानीमे उनका शरीर बिल्कुल भीगगया। उन्होंने प्रतिमाके चरणोंपर सिर टेकदिया और कहने लगे : भगवान्, मेरे पापके कारण सघपर कोई दोष नही आये। मैंने अनजाने ही यह पाप किया है। आपके आशीर्वादसे मैंने वृद्धावस्थाको महाकलङ्क से बचालिया है भगवान्! एक दिन आपने यौवनमे मारको पराजित किया था आज उसी शक्ति, उसी सत्यका वरदान मुझे भी दो निर्विकार !

सघस्थविर रोउठे जैसे आज उनका हृदय पाषाणोंको भेदकर बाहर आजानेकेलिए घोर सघर्ष कररहा था।

आकाशमे बादल गरजते रहे। सघाराम निस्तब्ध-सा सोरहा था। हवाके तेज झोंकोंमे पानी छहरजाता था और अन्धकारमे तड़पने लगता था।

[६]

प्रभातकी शीतल वेलामे बादल फटनेलगे और नीला आकाश बीचमेसे झॉकनेलगा जैसे आज प्रकृतिकी उदासीनताको बढानेकेलिए ही भोरने वस्त्र धारण किये थे। शीतल वायु बलहीन-सी चलरही थी। दूर क्षितिजपर प्रकाश फूटरहा था।

अन्धा भिक्षु कौत्सुभ चैत्यमेसे निकलकर पुकार उठा–'नन्दिनी !'

नित्यकी भॉति उसे आज दूरहींसे उत्तर नही मिला। नन्दिनीने धीरेसे पास आकर कहा—'बाबा !'

'हॉ वत्से !' स्नेहसे अन्धा वृद्ध उसके सिरको छूनेकेलिए टटोलने लगा। अनुवर्त्तिनी झुकगयी। कोई कुछ न बोला। वृद्धने ही कहा—'अनुवर्त्तिनी, मुझे तड़ाग तक ले चलोगी ?'

'क्यो नही ले चलूँगी ?' खिन्नतासे नन्दिनीने उत्तर दिया।

अनुवर्त्तिनी आज कुछ अपनेको भूली सी थी। आज उसके हृदय मे अज्ञात आशङ्का होरही थी। होठ जुडे थे, आँखोंमे उदासी झाँकरही थी।

वृद्ध बोला—'अनुवर्त्तिनी ?'

'भिक्षु ?' अनुवर्त्तिनीने कहा।

'तू आज उदास-सी लगती है मुझे। क्या आज सूर्य्य नित्यकी भाँति पूर्वसे नही उगरहा ? नित्य तो इतनी बाते करती थी कि मैं सुनते सुनते थककर तुझे चुप करनेका पथ खोजता था और आज तू बिल्कुल मौन है। इसका कारण क्या है ?'

'कुछ तो नही। क्या प्रत्येक वस्तुका कारण होना आवश्यक है ?' अनुवर्त्तिनीने कहा।

'प्रत्येक क्रियाके परिणामका मूल हेतु कारण ही है नन्दिनी। अनेक कारणोंसे अनेक कार्य्य होना अथवा इसके विपरीत भी सापेक्ष संसर्गका ही आवश्यकीय रूप है।'

'क्या होगा कहकर भी ?' अनुवर्त्तिनी दबीहुई-सी कहउठी।

'कहो न ?' वृद्धने आग्रह किया।

'बाबा! आनन्द भिक्षुने कहा था कि संघके ध्वंसके दिन निकट आरहे हैं।'

'यदि आ ही रहे हैं तो कौन रोकसकता है पगली ? भविष्य तो अपने हाथोंमे नही है।'

'और मुझे ज्योतिषीके मुखपर एक भयकी रेखा दिखायी दी थी।'

'किसके ? भय ? क्यों ?' वृद्ध चौंककर कई प्रश्न एकसाथ पूछबैठा।

शान्तिसे नन्दिनीने कहा—'आनन्द भिक्षुने मुझे बताया था और कहा था अदृष्ट यही कहता है।'

'किससे ?' वृद्धने फिर पूछा।

'यह तो उन्होंने नही बताया,' अनभिज्ञ नन्दिनीने उत्तर दिया। वृद्ध चुप होगया मानों किसी गहरी चिन्तामे था। उसका ऐसा भाव देख कर अनुवर्त्तिनी बोलउठी—'तुम ऐसे चुप क्यों होगये ?'

'मेरा हृदय किसी अज्ञात प्रेरणासे दहलरहा है।' वृद्धने अपनी सफेद पुतली घुमातेहुए कहा। अनुवर्त्तिनी उस स्थानकी निर्जनता तथा वीभत्सता देखकर भयभीत होगयी। उसने वृद्धका हाथ पकडकर कहा— 'चलो यहाँसे, मुझे डर लगता है।'

'डरकी क्या बात है ? सत्य और शान्ति हमारे साथ हैं। गौतमका वरदहस्त हमारे शीशपर है। मार अपना कुछ नही करसकता। तुम्हारे हृदयमे कोई मोह तो नही है ?' वृद्ध बात करते-करते सहसा पूछबैठा।

'हाँ है,' अनुवर्त्तिनी झेपतीहुई बोली।

'क्या है ?' वृद्धने अविचल भावसे पूछा।

'भिक्षु आनन्दने कहा था कि मैं विधवा नही हूँ। तभीसे मेरे हृदय मे एक तृष्णा एक स्वप्नकी मादक छलना-सी जागउठी है।'

'अनुवर्त्तिनी !' वृद्धने गम्भीर होकर कहा—'तुमने मेरा उपदेश नही माना। तुम निर्मम नही हुई।'

अनुवर्त्तिनी चौंकपड़ी। यह वह क्या प्रगट करगयी ! उससे कुछ भी नही बोलागया। वृद्धने फिर कहा—'अनुवर्त्तिनी, गौतमको साक्षी करके कहो कि तुम उस कल्पित मनुष्यकी मृगमरीचिकामे नही भटकोगी। आनन्द भिक्षुकी गणना मिथ्या नहीं होसकती, किन्तु क्या तुम वैधव्यके बलपर भिक्षुणी हो ? क्या पति प्राप्त होनेपर तुम लौटजाओगी ? गौतमको समर्पित होकर तुम एक साधारण मनुष्यके पीछे भागोगी ? कहो अनुवर्त्तिनी तुम इस चाञ्चल्यका प्रायश्चित करोगी ?'

'करूँगी भिक्षु !' मन्त्रमुग्ध अनुवर्त्तिनीने उत्तर दिया। वह लाज से गड़ी जारही थी।

'अनुवर्त्तिनी, आज मैं तुम्हे एक बात बताऊँ, सुनोगी?' वृद्धने पूछा।

'कहो न ?' नन्दिनी नम्र होकर बोली।

'अनुवर्त्तिनी,' वृद्ध बोलनेलगा, 'तुमने संघमें एक हलचल मचादी है। संघका प्राण मानों मायामें लिप्त होचुका है। तथापि तुमभी फिसली हो ? फिर आर्य्यसंघके मानकी रक्षा क्या यह अन्धा करेगा ?'

वृद्ध अधिकाधिक चिन्तामग्न और गम्भीर होता जारहा था। वह कहतागया— 'मानवकेलिए राष्ट्र बदलेगा। अनुवर्त्तिनी, यह मेरी भविष्य-वाणी है। तुमको अपना स्वार्थ त्यागना पड़ेगा। तुम्हारा सुहाग कुछ नहीं। तुम्हारेलिए पुरुष कुछ क्षणकेलिए एक घिनौना भेड़िया है। तुम उसपरसे अपनी आसक्ति हटालो। तुम महोल्लासके नीचे काषाय ग्रहण करचुकी हो। फिर तुममे यह अहंकार क्यों? तुममें यह मादकता कैसे बची रहगयी? तुम गौतमकी पवित्र अनुवर्त्तिनी आज एक साधारण पुरुषकी अनुवर्त्तिनी होने जारही हो ! क्या यह सबकेलिए लज्जाजनक बात नहीं ! क्या तुम अपनेको सत् चिन्तन, सत् कर्म्म करनेवाला समझती हो ? अनुवर्त्तिनी, फिर कहो कि तुम चञ्चल नहीं हुई हो। तुम भिक्षुणी हो। तुम्हे गौतमके आठों उप-देश जीवनमें पालन करनेकेलिए याद हैं। तुम गिरतोंको उबारोगी। तुम गौतमपर पूरा-पूरा विश्वास रक्खोगी और तुम्हे अपनी प्रतिज्ञाका पूरा-पूरा ध्यान रहेगा।'

वृद्ध चुप होगया। हवामें वृक्षोंके पत्ते खड़खड़ा उठे। अनुवर्त्तिनी अपराधिनीकी भाँति देखतीरही। वह कुछभी बोलनेका साहस न करसकी। वृद्धने फिर कहा—'अनुवर्त्तिनी एकबार गौतमकी शरणमें आओ।'

अनुवर्त्तिनी काँपते स्वरसे साहस करके बोली—'बुद्धं शरणं, धम्मं

शरण, सघ शरणं गच्छामि।'

वृद्ध हँसपड़ा। बोला—'आया न साहस? अच्छा जो मैंने कहा उसे भी स्वीकार करो। तब सघपर यह भयानक आघात न होगा।'

अनुवर्त्तिनीने साहस बटोरा। नीचे देखतीहुई स्थिर स्वरसे जो वृद्धने कहलाया धीरे-धीरे दोहरागयी।

वृद्धने कहा—'बस इतना ही काफी है।' और वह चिल्लापडा—'तथागत! तुम्हारे अनुवर्त्ती और अनुयायी तुम्हे भूलते जारहे हैं, उन्हे जगाओ भगवान्!'

और वृद्ध बड़ी भयङ्करतासे चीखउठा—'बुद्ध शरण, धम्म शरण, संघं शरणं गच्छामि!' मानो आज वह अकेलाही आर्य्यसघका प्रतिनिधि बनकर बुद्धधर्म और सघकी शरणमे जारहा था। अनुवर्त्तिनी मुँह - फाडे अवाक् और भयभीत-सी उसे देखरही थी। शब्द अभीभी गूँजरहे थे।

वृद्धने पहले-जैसे स्वरसे कहा— 'चलो।' अनुवर्त्तिनीने उसका हाथ पकड़लिया। प्रकृतिमे फिरभी नित्यका-सा जीवन नही था। आज मानों अदृष्टकी ऊष्मा चारों ओर तीव्र वेगसे फैलरही थी। एकाएक अनुवर्त्तिनी बड़बड़ा उठी—'बुद्ध शरण, धम्म शरण, सघ शरण गच्छामि।' वृद्ध हँस पड़ा। अनुवर्त्तिनीका हृदय मॅजगया, उत्फुल्ल होगया, पवित्र होगया। उसने देखा—वृद्ध गम्भीर था।

उस समय भिक्षु जल्दी-जल्दी अपना काम समाप्त करके महा-विहारकी ओर जारहे थे। अनुवर्त्तिनी और वृद्ध भी उधर ही चलदिये।

[७]

सघस्थविरने सिर उठाकर पूछा— 'आनन्द भिक्षु, कहो क्या कहते हो?'

आनन्दने निष्प्रभ मुखसे कहा—'आर्य्य, मैं सबका त्याग करने आया हूँ ?'

'त्याग !' संघस्थविर चौंककर उठखडे होगये—'तुम भिक्षु आनन्द संघका त्याग करने आये हो ? तुम चीवर उतारकर फेंकदोगे। चौदह वर्षसे जिसे मैंने भिक्षु होकर भी पिताकी ममतासे पाला है वही तुम आज मुझसे कहनेकी धृष्टता कररहे हो कि तुम वासनाओंसे पराजित होकर यह चीवर फाडकर फेंकदोगे। जिसकी शान्तिसे आज आर्य्यावर्त्त, दाक्षिणात्य, चीन, यवद्वीप, सारा संसार एक सूत्रमें बँधगये हैं, सहस्रों जीवन जिसकी पवित्रता की छायामें सार्थक होगये हैं, उसीकी गरिमाको ठुकराकर तुम मारके सामने हतभाग से रोरहे हो ?'

'संघस्थविर !' आनन्दका मुख सुन्दर होउठा—'मैं गृहस्थका जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। मैं कोई पाप तो नहीं कररहा। भिक्षु गृहस्थ हो सकता है, गृहस्थसे फिर भिक्षु होसकता है।'

'नहीं आनन्द', संघस्थविरने फिर कहा—'आज आर्य्यावर्तके प्रकाण्ड मेधावी विजनतीराके संघारामको सिर झुकाते हैं। आनन्दभिक्षु एक साधारण व्यक्ति नहीं। वह बुद्धभिक्षुका शिष्य, अनेक विद्वानोंको परास्त करचुका है। उसके कठोर विवाद धर्म्मकीर्त्तिके से उज्ज्वल और अकाट्य प्रमाण हैं। आर्य्यसंघके चारोंओर विपत्तिके बादल घिररहे हैं। राजा अपना नहीं है। ब्राह्मणोंका प्रहार दिन-पर दिन प्रबल होता जारहा है। सिद्धोंका प्रजापर प्रभाव बढता जारहा है। चारोंओर भयानक बातें सुनायी देती हैं। बर्बर यवनोंका आक्रमण प्रायः होतारहता है। ब्राह्मणोंने जो विष फैलाया है वह धीरे-धीरे हमारी भक्त प्रजामें व्याप्त होता जारहा है। बर्बर यवनोंने पुरुषपुर, तक्षशिला, और अनेक बौद्धविहारोंको भस्मीभूत करदिया है। आनन्दभिक्षु, तुम चले जाओगे तो आर्य्यसंघकी रक्षा क्या मैं अकेला करूँगा ? मैं जानना चाहता हूँ कि तुम स्त्रीपर इतने आसक्त क्यों होगये ?'

आनन्द निर्विकार-सा खड़ारहा। वह बोला—'भदन्त, मैं जीवनमें आज रूप और मोहसे पराजित होगया हूँ। मैंने कभीभी जो नही देखा उसे आज देखना चाहता हूँ प्रभो! यदि आर्य्यसघ एक व्यक्तिपर निर्भर है तो वह अधिक जीवित नही रहसकता।'

'भिक्षु!' सघस्थविर चीखउठे—'तुम सघका अपमान कररहे हो।'

'नही भिक्षु!'

'तुमने मुझे भिक्षु कहा है?'

आनन्द हँसपड़ा—'अभिमानको ठेस पहुँची है आर्य्य! आज आप साधारण भिक्षु नही रहे न? किन्तु मनुष्य सबसे ऊपर है। उसका सुख हम मठो और विहारोंमे बन्दी नही करसकते।'

सघस्थविरने आगे बढकर कहा—'आनन्द, तुम स्त्रीके आलिङ्गन को सुख कहते हो, तुम्हे लज्जा नही आती?'

'लज्जा?' आनन्दने निर्भीक स्वरसे कहा—'आर्य्य, क्या यशोधरा पाप है? क्या राहुलका जन्महेतु पाप है? मैं पूछता हूँ आज क्या मातृगौरव पाप है? नही, सघस्थविर! यौवन भिक्षु होकर रहनेकी आयु नही है।'

'पापात्मा,' सघस्थविरने कहा—'तुझे नारीके स्तनोंमे आज जीवन का स्वर्ग दिखरहा है? तुझे उन बड़ी-बडी आँखोमे जो अमृत दिखरहा है वह वास्तवमे विष है। यौवन समाप्त होजायगा, बल क्षीण होजायगा किन्तु आत्माका ध्वस होनेपर तू कुत्तोकी तरह तड़प तड़पकर मरजायगा।'

'सघस्थविर,' आनन्दने गम्भीर होकर कहा—'यदि यौवन पाप है तो प्रकृतिने उसे बनाया ही क्यो? व्यवहार और प्रकृतिका सम्बन्ध अटूट है। यह एकक्षण अपना इतना कठोर सत्य लिये है कि कोईभी उसे झुठा नही सकता। मैं जाना चाहता हूँ।'

सघस्थविर क्रुद्ध होउठे। उन्होने फूत्कार किया, 'तुम नही जासकते।'

'क्यों ?' आनन्दका स्वर खिंचगया।

'श्रेष्ठि धनदत्तने तुम्हे पालितपुत्रके रूपमे सङ्घको अपने समस्त धन के साथ दान किया है। यदि तुम्हे मैं भी छोडदूँ तोभी श्रेष्ठि धनदत्त नही छोडेगा।' और वह कठोरतासे हँसउठे।

आनन्दने विक्षुब्ध होकर कहा—'तब मैं एक असहाय दस वर्षका बालक था। कुछभी नही जानता था। श्रेष्ठि धनदत्तने जिस हाथसे मेरे मुखमें अन्न डाला था, उसी हाथसे मेरे जीवनका सारा सुख-हर्ष छीनलिया था। मेरी बलिपर निर्वाणकी चाह करके क्या वह अपनी तृष्णासे मुक्त होसकेगा ? संघस्थविर मैं मनुष्य हूँ बलिका बकरा नहीं जो किसीके दानको स्वीकार करके धनकी तरह निर्जीव-सा अपना सिर झुकादूँ। मैं अस्वीकार करता हूँ। मैं किसीका पशु नहीं हूँ।'

'नराधम,' सघस्थविर चिल्लाउठे—'आर्य्यसङ्घ तुझे कभीभी क्षमा नहीं करेगा। राजाको विवश होकर न्यायकी ओर झुकना पडेगा। तू सघ नहीं छोड सकता।'

'न्याय ?' आनन्दके होठोंपर विद्रूप खेलउठा—'मनुष्यको पशु बनादेना आपका न्याय है! यदि यही आपकी गरिमाका यश है तो आर्य्य-सघ टुकडे टुकड़े होजायगा। गौतमके अन्तिम पग-चिन्हतक पवित्र आर्य्य-भूमिसे मिट जायेंगे।'

'चुप रहो!' सघस्थविर हाँफउठे।

'मैं निश्चय ही जाऊँगा बुद्धभिक्षु! तुम मुझे कारागारमे रखवा सकते हो, तुम मुझे भागनेसे रोकसकते हो, किन्तु मुझे भिक्षुके रूपमें नही रख सकते।'

क्रोधसे सघस्थविर उसकी ओर बढनेलगे। उनकी मुट्ठियाँ बँधगयीं।

आनन्दभिक्षु कहतारहा—'मैं चला जाऊँगा, मेरे साथही नन्दिनी जायगी।'

'नन्दिनी !' संघस्थविरके मुँहसे अकस्मात् निकलगया। उनके हाथ खुलगये। वह व्याकुल-से पूछउठे—'नन्दिनी जायगी ?'

आनन्द ठठाकर हँसपडा। वह कहनेलगा—'क्यों, संघस्थविर ? नारी पाप है, आलिङ्गन विष है ? और नन्दिनीका नाम आतेही आप कैसे इतने व्याकुल होउठे ! नन्दिनी जायगी। मैं जानता हूँ आप उसपर आसक्त हैं। आप अपना सारा छल लगाकर भी उसे नही रोकसकते।'

संघस्थविर लौटगये। प्रकोष्ठकी दीवारकी ओर मुँह करके उन्होंने कहा—'आनन्द, नन्दिनी एक आग है, वह सबको भस्म करदेगी। उसे जाना ही होगा।'

आनन्द उत्फुल्ल सा पुकारउठा—'संघस्थविरकी जय हो ! उन्होंने आज एक सत्य कहा है क्योंकि उनके अभिमानके पङ्ख उस प्रखर ज्वालामे झुलसगये हैं।'

संघस्थविरने कुछ नही कहा। वह वैसेही उसकी ओर पीठ करके खड़ेरहे। आनन्दभिक्षुने देखा वह जैसे बिल्कुल थकगये थे। संघस्थविर वही भूमिपर पराजित-से बैठगये। उनके चरणोंके नीचे मेधावियोंका ज्ञान तालपत्रोंपर लिखापड़ा था। किन्तु वे चुप थे। किसी विकराल छायाने उनके स्वरको अवरुद्ध करदिया। भय और क्रोधसे वह हाथोंमे मुँह छिपा कर लेटगये। आनन्द चलागया।

[८]

अनुवर्त्तिनी विशाल स्तम्भके सहारे खडी होकर आरतीके बाद इधर उधर देखनेलगी। भिक्षुगण अपने - अपने कार्य्यमे मग्न थे। अगरुधूमकी गन्धसे वायुमण्डल महकरहा था। उसी समय आनन्दभिक्षुने उत्तेजित

आवेशमे प्रवेश किया और नन्दिनीसे कहा—'शुभे, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।'

नन्दिनीने कहा—'मुझसे ?'

और वह विस्मित सी उसके साथ चलपडी। भग्नस्तूपके चारोओर घास उगरही थी। दोनो वही बैठगये। आनन्दका श्वास फूलरहा था। उसने एकबार चाराओर देखा और कहा—'नन्दिनी, आज जोकुछ मैं तुम से कहरहा हूँ तुम्हारा जीवन, यौवन और भविष्य सबकुछ उसीपर निर्भर है।'

नन्दिनी चकित होगयी। उसने कहा—'आर्य्य, ऐसी क्या बात है मैं भी तो सुनूँ।'

आनन्दभिक्षुने निर्भीक स्वरसे कहा—'देवी, मैं तुम्हारा पति हूँ।'

अनुवर्त्तिनी किंकर्त्तव्यविमूढ-सी बैठीरही। फिर एकाएक उसकी भृकुटि तनगयी। वह कठोर स्वरसे बोली—'भिक्षु, तुम एक विधवाका नहीं एक उपासिकाका अपमान कररहे हो।'

आनन्द फिरभी नही चौंका। उसने कहा—'अकाल वैधव्यकी यह छलना तुम्हारा एक घोर अज्ञान है जिसके कारण तुम पर्वतसे उतरनेका मार्ग न पाकर ऊपरसे लुढकनेकेलिए तैयार होगयी हो।'

अनुवर्त्तिनी क्रोधसे चिल्लाउठी—'तुम पागल होगये हो भिक्षु !'

आनन्दने धैर्य्यसे कहा—'आर्य्यसघकी कोई स्त्री तबतक उपासिका नही होसकती जबतक उसका पति उसे आज्ञा नहीं देदे।'

'और आप', अनुवर्त्तिनी चिढकर कहउठी—'धनदत्तके पालित पुत्र जो सघको दान करदिये गये हैं, आज्ञा देने योग्य कबसे होगये ?'

'अनुवर्त्तिनी, मैं विद्रोही हूँ।' आनन्दने व्याकुल होकर कहा।

अनुवर्त्तिनी पागलकी तरह हँसउठी। उसने कहा—'भिक्षु, तुम

मुझे पागल बनारहे हो ? क्या मैं सचमुच इतनी सुन्दर हूँ कि आर्य्यसङ्घका मेधावी आनन्दभिक्षु सबकुछ त्यागकर मुझे प्राप्त करनेकेलिए इतना बडा असत्य गढरहा है ? मेरी माताका नाम तो बताओ भिक्षु ?'

आनन्दने उसे तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर कहा—'तुम्हारी माताका नाम चन्द्रभागा था, तुम्हारे पिताका अवलोकितेश्वर, और मेरे पिताका नाम चन्द्रसेन था, मेरी माताका विजनवती। दस वर्षकी आयुपर मुझे दस्यु पकड़कर लेगये थे। उन्होंने मेरे माता-पिताकी हत्या करदी थी। श्रेष्ठि धन-दत्तने मुझे एक दिन जान्हवीके तटपर पाया था। और तुम्हारे माता-पिता का पुराना मित्र श्रेष्ठि सुदत्त मेरे पिताका भी पुराना मित्र था। और सुनना चाहती हो ?—कि तुम्हारे पिता जब उज्जयिनीसे लौटकर मणिभद्रके यहाँ गये थे तभी उन्होंने मेरा तुमसे विवाह किया था, क्योंकि अवलोकितेश्वर चन्द्रसेन के साथ-साथ बालीद्वीपसे व्यापार करना चाहते थे, तुम्हारी माता '

'भिक्षु', अनुवर्त्तिनी सिर पकडकर रोनेलगी—'मैं नही जानती मैं क्या करूँ। भिक्षु, तुम, तुम मेरे ? नही, नहीं।'—फिर वह चुप हो ऊपर देखकर कहउठी—'क्या तुमने गणनासे ही तो सब नहीं जानलिया ?'

'नहीं नन्दिनी', स्नेहसे आनन्द कहउठा—'गणनासे नाम नही निकलता। और यदि वह भी सुनना चाहती हो जो एक दस वर्ष तकका बालक याद रख सकता है तो वह भी सुनो ?'

अनुवर्त्तिनी थकित-सी बैठीरही। आनन्द कहनेलगा—'चलो नन्दिनी, सघमे हम साथ-साथ नही रहसकते। सघ कहता है यौवन पाप है, प्रेम पाप है किन्तु मैं इस सबका त्याग नही करसकता। मेरा जीवन एक शुष्क नीरस पेडका ठूँठ-मात्र बनकर नही रहसकता। आज जो घटा छायी है वह मेरी अपनी है। वर्षोंसे तुमने मेरी प्रतीक्षा की है, दुःखोंसे पराजित होकर तुमने अपनी हारको भाग्यकी जय बनाकर सिर झुकादिया है। देखो, यह भी एक दिन है कि तुम्हारा खोयाहुआ कोष आज तुम्हारे

सामने आया है नन्दिनी ! हम तुम, तुम हम, और किसीसे कुछ नहीं । संसारका बडे-से-बडा वैभव तुम्हारे चरणोंपर न्यौछावर है आओ नवल । जिस पतिकेलिए रो-रोकर तुमने तुम्हारी माताने आँखे खोयी हैं आज वह अचानक ही तुम्हारे जीवनके सुखस्वर्गके द्वार खोलने तुमसे भीख माँग रहा है ।'

अनुवर्त्तिनीने देखा : आनन्दके मुखपर अद्भुत रूप आतुर होउठा था। वह देखतीरही। उसने कहा—'तुम ? तुम मेरे देवता हो किन्तु आर्य्य-संघके लोग क्या कहेगे ? क्या वे इसपर विश्वास करेगे ? नही भिक्षु, जब इतनी बीतगयी तो अब कितना सुख है जिसकेलिए यह रूप ढँकदिया जाय ।'

'रूप ?' आनन्दने कहा—'यह परवशताका रूप चाहे कुछ हो मन का सौन्दर्य नही है, क्योंकि इसमे सत्यकेलिए संघर्ष करनेकी शक्ति नही रही है। क्या तुम कहसकती हो कि तुम पुरुषसे घृणा करती हो ? क्या यह अथाह सौन्दर्य लेकर तुम केवल पत्थरोंसे टकराकर हाहाकार-मात्र करनेकेलिए हो ?'

अनुवर्त्तिनी काँपउठी । उसने कहा—'तथागत, मेरी रक्षा करो । मैं नारी हूँ कुछभी नही समझती ।'

आनन्द खिन्न-सा बोला—'नन्दिनी, तुम पागल हो । तुम भयसे जड होगयी हो ।' वह खडा होगया ।

अनुवर्त्तिनीने धीरेसे कहा—'नही भिक्षु, मैं गौतमकी उपासिका हूँ। तुम रूप और यौवनके मदमे जीवनके उच्च आदर्शोंको भूलकर फिरसे कीचड मे पाँव देना चाहते हो । मैं पवित्र उपासिका तन और मनसे गौतमकी शपथ खाकर संघकेलिए अपना समर्पण करचुकी हूँ। मैं कही नहीं जाऊँगी।'

आनन्दने सुना । पाँव लडखडागये । वह मूर्छित होकर गिरगया। अनुवर्त्तिनी चीखउठी। गोदमें आनन्दका सिर रखकर वह किसीभी स्त्रीकी

भाँति व्यजन करनेलगी। जब उसने सिर उठाकर देखा, सामने सघस्थविर बुद्धभिक्षु खडे क्रोधसे काँपरहे थे। उनका मुख काला और विकृत होरहा था।

[६]

सन्ध्या बीतचली। बादलोंके कारण गहन अन्धकार छागया। आज सघमें एक काटनेवाली उदासी सबके हृदयमे शङ्का उत्पन्न कररही थी। हवा चलरही थी। सघका सिंहद्वार बन्द करदिया गया। चर्रांकर पट मिलगये। अन्धकारकी छाया डरावनी होकर प्राङ्गणमे फैलगयी। उस उत्कट नीरवमे एक असह्यता थी जो मन मिचलारही थी।

सब भिक्षु इकट्ठे होरहे थे। सघस्थविरने घोषणा की थी कि आज एक प्रमुख प्रश्नपर विचार करना है। सब गम्भीर और उत्सुक थे। एक ओर उपासिकाएँ बैठी थी। अनुवर्त्तिनी चुपचाप एक ओर बैठी थी। आज वह डरी हुई, धैर्यहीन, भिक्षु-तेजसे भ्रष्ट-सी दिखाई देरही थी। आनन्द भिक्षु निष्प्रभ-सा अनुवर्त्तिनीको एकटक देखरहा था।

एकाएक अन्धा वृद्ध कौत्सुभ बोला—'सघस्थविर, आज इस समय इस मन्त्रणाकी क्या आवश्यकता है ? क्या कारण है उदासीनताका ?'

सघस्थविर गम्भीर होकर बोलपडे—'भिक्षु, इस पैशाचिक अन्धकारका कारण केवल नन्दिनी है।'

नन्दिनी चौकपड़ी। वह उठखड़ी हुई और सघस्थविरकी ओर उठ आयी। कौत्सुभ चुप होगया। सघस्थविरने देखा वह क्रोधसे काँपरही थी। वे कहनेलगे—'आर्य्य भिक्षु-समुदाय सुने ! गौतमके सिद्धान्तोंको मानकर चलनेवाले इन भिक्षुओंका जीवन सदा आदर्श रहा है। उसमे कोई कलुषकी छाया भी नही। फिर क्या कारण है कि सघके भिक्षुओंके हृदय से वैराग्य हटता जारहा है ? क्या कारण है कि मेधावी आज बुद्धिहीन, वीर्यहीन, तेजहीन, नरककालोंका भार उठाये मानव जीवनके अभिशाप

बनकर महापापके विषको फैलारहे हैं ? इस सबका कारण एक है। वह है केवल नन्दिनीका आगमन। क्या आजसे पहले भी कभी सघमे यह तामसी निर्जनता फैली थी ?'

एकत्रित भिक्षु समुदाय चुपचाप बैठारहा। वे लोग नन्दिनीकी ओर देखरहे थे। सघस्थविर गम्भीर थे। कभी कभी उनके अधरोंकी कोर फड़कने लगती थी, किन्तु धूमिल दीपोंके प्रकाशमे कोई उसे नहीं देखपाया। अनुवर्त्तिनी जड-सी खडी पृथ्वीकी ओर देखरही थी। सघस्थविरने एकबार भी उसकी ओर नही देखा।

सघस्थविरने फिर कहा—'अमिताभके चरणोकी शपथ खाकर कहो क्या मै झूठ कहता हूँ ?'

एकत्रित भिक्षु हिलउठे। फुसफुसाहट तीव्र होनेलगी। शब्द सुनायी देगया—'नही, आप ठीक कहते हैं।'

भिक्षुसमुदाय फिर चुप होगया। उत्तेजित आनन्दने उठकर आगे बढकर कहा—'माननीय भिक्षुगण ! आर्य्य उपासिकाएँ ! भदन्त सघस्थविर ! मैं पूछता हूँ क्या मनुष्यकेलिए अपने आपको धोखा देना आवश्यक है ?'

सबकेसब चौकपडे। सघस्थविर एकबार विचलित होगये, किन्तु उन्होंने शीघ्रही अपनेको वशमे करके कहा—'भिक्षुआनन्द, तुमपर मारने सरलतासे विजय प्राप्त करली है।'

'नही आर्य्य', आनन्द कडकउठा—'आप औरोको धोखा देसकते हैं किन्तु आनन्दभिक्षुको कोई धोखा नही देसकता। आप सोचकर बोले। नन्दिनी यदि सघके अपवादका कारण मानली गयी है तब तथागतके अनुवर्त्ती जो इस सघमें रहते हैं वे सब पशु हैं—नृशस नही, बलि पशु, कुत्ते जो पूँछ दबाये खडे रहते हैं। क्या गौतमकी अनुवर्त्तिनी, आर्य्य भिक्षुणी उपासिकाका इस प्रकार अपमान करना सघकी मूल शक्ति और

तेजका अपमान करना नही है ? भगवान् तथागत ’

सघस्थविर घृणासे अपना नीचेका होंठ दबातेहुए हँसपडे। उन्होने कहा—‘भिक्षुआनन्द, तुम नारीके मोहमे फँसगये हो विवेकहीन !’

समस्त समुदाय विवेकहीन शब्दका उच्चारण करता ठठाकर हँसपडा। उस हँसीमे आनन्दभिक्षुकी पुकार डूबगयी। अन्धा वृद्ध कौत्सुभ चुप था। वह कुछभी चेष्टा नही कररहा था। समुदायकी हँसी गूँज-गूँजकर बढरही थी।

अनुवर्त्तिनीने देखा अन्धकारमय श्मशानमे कंकाल अट्टहास करके ताण्डवका आयोजन कररहे थे। वह काँपगयी। भीरु नारी डरगयी।

आनन्द साहस करके आगे बढा—‘सघस्थविर, आप अपना मोह मुझपर क्यों मँढरहे हैं ?’

‘मैं ?’ सघस्थविरने हँसकर कहा—‘गौतमके इस पवित्र सघकी शपथ करके कहो कि तुम नन्दिनीपर आसक्त नही हुए हो ?’

आनन्दभिक्षु सकुचगया। बोला—‘आर्य्य, यह सघ पवित्र नही रहा।’

सघस्थविरने गरजकर कहा—‘आर्य्यभिक्षु, समुदाय सुने ! आनन्द भिक्षु सघको अपवित्र कहते हैं।’

एक भिक्षुने उठकर कहा—‘आनन्दभिक्षु अपने पथसे गिरगये हैं।’

आनन्दभिक्षुने सिर झुकालिया। समस्त समुदाय फिर जोरसे हँस पड़ा।

सघस्थविरने कहा—‘भिक्षुआनन्दको दण्ड मिलेगा। किन्तु अनुवर्त्तिनीको सघसे निकाल दियाजाय।’

नन्दिनी अबतक चुपचाप सब देखतीरही थी। अब वह आगे बढ़कर आँखोमे आँसू भरे बड़ी सौम्यतासे बोली—‘सघस्थविर !’

सघस्थविरने कठोरतासे कहा—'नारी, यह लीला अभिशाप है। पवित्र गौतमके अनुवर्त्तियोंको तुम्हारी कोई आवश्यकता नही। आगकी चिनगारीको कोई घरमे नही रखता।'

नन्दिनीने तडपकर कहा—'नो क्या सघमे मनुष्य नही तिनकोका ही ढेर है।

सघस्थविर क्षणभरको चुप होगये। उन्होंने कहा—'तुम आगसे भयानक पापसे भी निर्भीकमना हो।'

अनुवर्त्तिनी चिल्लाउठी—'सघस्थविर, आपकी बुद्धि भ्रष्ट होगयी है।'

'मुझे तुम्हारे उपदेशोंकी कोई आवश्यकता नही है।' सघस्थविरने उत्तर दिया। 'तो मैं', नन्दिनी सारा बल लगाकर सघको कॅपातीहुई बोली—'आर्य्यसघको पापकी आगमे भस्म होताहुआ ही देखूॅगी। एक उपासिकाका अपमान करना खेल नहीं। बुद्ध, धर्म्म और सघकी समस्त शक्ति एकसाथ महाध्वसकी इन बर्बर पीडाओके विरुद्ध उठखडी होगी। आप गौतमके अनुयायी बनते हैं? आप बिना कारण ही मेरा अपमान कररहे हैं।'

नन्दिनीका मुॅह लाल होगया था। उसका शरीर थरथर कॉपरहा था। भिक्षु क्रोधसे विह्वल होउठे थे। सघस्थविर कुटिलतासे हॅसपडे। बोले—'आर्य्य भिक्षु-समुदाय सुने! यह नारी क्या कहरही है? क्या हम इन बन्दरघुडकियोंसे भयभीत होकर पराजित होजॉय?'

समस्त समुदाय अट्टहास करउठा।

नन्दिनी कॉपतीहुई बोली—'नीच सघस्थविर तुम · · '

'सघस्थविर और नीच?' किसीने कड़ककर कहा—'निकलो नारी सघसे · · · '

समस्त समुदाय नन्दिनीकी ओर मुडगया। नन्दिनी दोनो हाथ

खोलकर पुकारउठी—'आनन्द, कहाँ हो तुम ? आनन्द ?'

किन्तु आनन्दके बढ़नेके पहलेही भिक्षुओंने उसे संघस्थविरके इङ्गितसे पकड़लिया था। वह व्यर्थही छूटनेकेलिए बल करनेलगा।

बादल गरजनेलगे। घटाटोप अन्धकार छायाहुआ था। राह नहीं सूझरही थी। बिजली कड़ककर भयङ्करता बढ़ातीहुई आकाशमें महान विलोड़न कररही थी। भिक्षु नन्दिनीको धकेलकर बाहर लेचले। आनन्द चिल्लाउठा—'नन्दिनी ! प्रिये !'

भिक्षुओंने दाँतोंसे जीभ काटली। वे बोलउठे, 'आनन्दभिक्षु, शान्त पाप ! शान्त पाप !'

भिक्षुओंने नन्दिनीको बाहर निकालकर द्वार बन्द करलिया। भीम-काय द्वार चर्रापड़ा।

इसी समय संघमेंसे भिक्षुओंने कहीं अश्वोंकी टापें जल्दी-जल्दी खटखटकर बजतीहुई सुनीं। बिजली चमकरही थी। आकाश हाहाकार कररहा था। और जब कुछ क्षण बाद अन्धे कौस्तुभने कहा— 'नन्दिनी सचमुच गयी क्या ?'—तो कोई सबके सिंहद्वारपर तड़ातड़ लोहेके घनोंका प्रहार कररहा था। बाहर कोलाहलके ऊपर भिक्षुओंने दग-दग-दग करके वृक्षोंके काटनेका भयङ्कर रोषित शब्द उन्मत्त होकर गूँजतेहुए सुना। अस्त्रों की झंकृति महाकालानलके प्रकाश-सी वहाँ व्याप्त होगयी। भिक्षु काँपउठे। लौह-घनोंका रव मानों वज्रपर वज्रका तुमुल प्रहार था। उस गम्भीर, विकट निर्घोषको सुनकर भिक्षुओंका हृदय दहलगया। वे एक दूसरेका मुँह देखने लगे। बिजली आकाशसे प्रलयके डमरुके समान कड़ककर कहीं दूरपर गिरी। बादल आपसमें टकरागये। गम्भीर मूसलाधार वर्षा होनेलगी। अन्धकार दूना होगया।

घोर शब्द करता सिंहद्वार अर्राकर टूटगया। आक्रमणकारियोंका

स्वर घोर कोलाहल करता दिग्दिगन्तको बधिर करउठा। घोडे दौडनेलगे। बादल आकाशमे गरजते हुए हाहाकार करउठे।

[१०]

अन्धकारमे कुछ कराहे आस्मानसे टकरारही हैं। सघारामके बाहर के भागमे स्तूपके पास अनेक घोडे हिनहिनाकर पृथ्वी रौंदरहे हैं। जगह-जगहसे लपटे उठकर हाहा खारही हैं। प्राङ्गणमे स्थान-स्थानपर शव पडे हैं जिनके रक्तसे समस्त प्रस्तर भीगगये हैं! बुद्धकी प्रतिमा खण्डित होकर भूलुण्ठित पडी है। तालपत्राके जलनेकी चिरांध व्याप्त होरही है। शस्त्रोंकी खडखडाहटसे अबभी आकाश गूँजरहा है।

कठोर सैनिकोके शरीरोंपर ऊनके वस्त्र कभी-कभी उनके साथ चलती उल्काओंके प्रकाशमे चमक उठते हैं जिसे देखकर सघारामकी प्राचीन दीवारे स्तब्ध-सी छाया बनकर कॉपउठती हैं। यवन सैनिक कही-कही बैठकर एकसाथ खा-पीरहे हैं जिन्हे देखकर उनके एक-आध साथी भारतीय नाक सिकोडरहे हैं। तब कोई यवन सैनिक कहता है—'हमारे देशमे भेद नही होता। हम सब मुसलमान भाई-भाई हैं। कोई ऊँच-नीच नही है।'

भारतीय इसे समझ नही पाता। सैनिकोंकी बर्बरतामे उनकी एकता एक शक्ति सी लगती है। तभी आते दिनने बादलोंके वस्त्रोंको उजालेके हाथसे एक ओर हटादिया। नीला आकाश झाँकने लगा। धीरे-धीरे भोर होगयी। एक प्रकोष्ठमें बहुमूल्य कालीनपर एक यवन बैठा है जिसके चारो ओर अनेक सैनिक खडे हैं। मदिराकी गन्ध उस प्रकोष्ठसे निकल निकलकर बाहर अलिंद मे भी फैलरही है।

यवनराजने उठतेहुए अपने साथके एक भारतीय क्षत्रियसे कहा—'क्यों, उस अनिंद्य सुन्दरीका क्या हुआ? कलरात अन्धेरेमे वह व्यर्थ ही घायल होगयी। बच तो जायगी? बहुत सुन्दर है वह।'

एक सैनिक यवनने कहा—'जी, वह पागल होगयी है।'

यवनराज हँसपड़े। उन्होंने कहा—'हिन्दू स्त्री तो बात-बातपर पागल होजाती है।' किन्तु, उसने मुड़कर क्षत्रियसे कहा—'मेघराज, तुम स्त्रियोंको गेरू पहनाकर साधू बनादेते हो? तुम यौवनका रस नही लेते? हमारे देशमे ऐसी स्त्रियाँ आँखोमे पलती हैं। अद्भुत है तुम्हारा देश!'

मेघराजने सिर झुकालिया। सब बाहर आगये। प्रागणमे नन्दिनी को लिये दो यवन सैनिक खड़े थे। उन्होंने यवनराजको प्रणाम किया और जयध्वनि की।

हठात् नन्दिनी बल करके उनसे छूटगयी और रोतीहुई सामने ही पड़े एक शवसे लिपटकर रोनेलगी।

यवनराजने देखा वह एक भिक्षुका शव था। उसके सुन्दर मुखपर तलवारोंके घाव थे। उसने इधर-उधर देखा। नन्दिनी रोते-रोते कहनेलगी—'तुम्हे छोड़कर चलीगयी थी देव! तुम्हारा कहा मैंने नही माना स्वामी! मुझे क्षमा करो।'

यवनराजने मुडकर क्षत्रिय मेघराजसे कहा—'यह स्त्री क्या कहरही है?'

मेघराजने कहा—'सर्दार! यह स्त्री कुलटा है, कोई वेश्या है अथवा अनाचारिणी है। यह इस संघका कोई भिक्षु है। इस भिक्षुणीका इससे कुछ अनुचित सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि भिक्षुणी किसीभी पुरुषकी पत्नी बनकर नही रहती।'

'ओह!' यवनराज ठठाकर हँसपड़े। हमारी शबनमसे भी सुन्दर है ये! तुम्हारे देशमे स्त्री पत्नीत्व भी त्यागदेती है। यह सुन्दर युवक सिर मुँड़ाकर क्या करता था यहाँ? भगवान्का भजन? हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं होता।'

नन्दिनी एकाएक चिल्लाउठी—'स्वामी, मैं तुम्हारी ही पत्नी हूँ, मैं

अब कही नही जाऊँगी तुम्हे छोडकर, मुझे क्षमाकरो आनन्द ’

एक यवनने प्रवेश करके कहा—‘सर्दार, अपार रत्न राशि इस मन्दिर मे मिली है।’

‘अपार !’ यवनराजका मुख विस्फारित होगया। उन्होंने कहा—‘मेघराज, तुम्हारे देशमे मन्दिरोंके आदमी बडे लोभी होते हैं। हमारे देशमे तो ऐसा नहीं होता। इतने धनका यहॉ ये लोग क्या करते हैं जब खाते भी नही पीतेभी नहीं ?’

और वह फिर हॅसपडे। अचानक उनकी दृष्टि फिरी। उन्होंने देखा भिक्षुके शवपर स्त्री निष्प्राण सी पडी थी, जैसे इस आलिगनसे उन्हे ससार की कोईभी शक्ति अलग करनेमे असमर्थ थी। उनके मुँहसे केवल इतना निकला—‘तुम्हारा देश तो केवल अद्भुत ही है मेघराज ! यहॉ तो स्त्रियॉ बोलते-बोलते मरजाती हैं।’

मेघराजने फिर सिर झुकालिया। उस समय बाहर जयध्वनि होरही थी।

× × ×

होशमें आनेपर उस ध्वस और मुर्दोंके ढेरमेंसे एक अन्धा घायल वृद्ध आदतके मुताबिक चिल्लाउठा—‘अनुवर्त्तिनी, पानी ...’

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। वृद्धने पहलेसेभी अधिक जोरसे गला सुखातेहुए चीख लगायी—अनुवर्त्तिनी ई ई ई !’

अन्तिम अक्षरको खण्डहरकी ईंटे भी पुकारउठी। टूटा ध्वस्त सघाराम चिल्लाउठा, किन्तु फिरभी कोई उत्तर नहीं मिला।

वृद्ध कौत्सुभ वही तडपने लगा। आसपासके वातावरणसे शब्दका अजस्र प्रवाह होरहा था—अनुवर्त्तिनी ई ई ई ई ई मानों उस ‘ई’ का कहींभी अन्त नहीं था।

काई

पतिका चुनाव करनेकेलिए दुनियाकी आम बातोंको जाननेकी जरूरत होती है। डॉक्टर लक्ष्मणका यह कहना सुधाको बहुत जँचा। डॉक्टर लक्ष्मण अभी अपनी प्रैक्टिस जमानेकी ही कोशिश कररहे थे। उनको अक्सर शिकायत रहती कि वे इग्लैंड नही जासके। लड़ाईने उनके सब अरमानोंको एक धॉयसे, एक गरजसे बिल्कुल नेस्तनाबूद करदिया था। और अब वह कहते समाजका सुधार करना पुरुषोंके हाथमे उतना नही है जितना स्त्रियोंके। स्त्रियोंकी अँगरेजी अच्छी होनी चाहिए। जैसे हँसनेकी बजाय मुस्करानेसे औरतोंकी खूबसूरतीमें चार चाँद लगजाते हैं, हिन्दीकी बजाय अँगरेजीसे वही काम निकलता है।

वे कहा करते—'आज हिन्दुस्तानमे जो ज्वार आया है उसमे नारीने भी अपनी चूडियोमे बेड़ियोंकी झनकार सुनी है। यह समझना भूल है कि वह आदम और हव्वाकी तरह ईश्वरकी पहली रचना है, वह भी क्रमागत विकास का एक स्वरूप है।' फिर वे जोशमे आकर कहते, 'नारीको एक देवी समझता है एक राक्षसी। ठाकुरने उसे अर्द्धनारी - अर्द्धस्वर्गीय माना है। नारीके मुँहपर एक हँसी रहती है लेकिन भीतर एक अघड और रहस्य। वह आजतक नही समझी जासकी।'

और नतीजा निकालकर वे कहते थे—'आदमी बेवकूफ है, औरत पागल।'

इसको सुनकर सब अचरजसे देखते थे और सब हँसते थे, लेकिन डॉक्टर अपने विचारोंपर दृढ थे।

सुधाने डॉक्टरको परले सिरेका पहुँचाहुआ माना और अँगरेजीका

अखबार पढनेलगी ।-एकसे शुरू किया और नौबत यहाँतक पहुँची कि लायब्रेरीमे जाकर वक्तको पूरा करनेकेलिए दर्जनोंपर नजर गिरनेलगी ।

पब्लिक पार्कके बॉये तरफके अर्द्धचन्द्राकार पेडोके पीछे पीले रङ्ग के उस पुराने जमानेके गिरजे-जैसे पुस्तकालयमे उसके आने-जानेसे पहले के मुकाबिलेमे रौनक बढगयी ।

सुधा पढती, और फिर शब्दोंसे लडती । पहलेही दिन चलते वक्त लायब्रेरियनने नम्र शब्दोमे निवेदन किया—'कृपया अखबारोंमे निशान न लगाया कीजिए। आपको अपनी पसन्द दूसरोंपर जतानेकी इच्छा हो तो मुझे मुँहजबानी बतादिया करे । होसकता है जो खबर या बात आप बहुत महत्त्वपूर्ण समझे वह वास्तवमें ऐसी न हो ।'

सुधाने आँखोको सकुचित करके घूरा और 'माफ कीजिए, मुझे मालूम नहीं था ' कहकर अपना चमडेका बेग उठालिया और बाहर चलीआयी ।

किन्तु अखबारोंका पढना जारीरहा । डॉक्टर लक्ष्मण अपनी राय बतातेहुए कहते कि रूमानियाका तेल ही इस लडाईका असली कारण है । न रूमानियामे तेल होता न हिटलर ऑस्ट्रियापर हमला करता, न अँगरेजो से निकल जानेपर रूस जोर देता ।

'तेल !' वह गम्भीर होकर कहते—'तेल दुनियाकी एक नायाब चीज है। जो चीज चिकनी हो या आग पकडले वही तेल है । तेल कई तरहका होता है, मगर तेल नही तो कुछभी नही। तेलसे ही दुनिया चलती है, तेल ही से आपका बदन काम करता है ·   '

तब इन्टरकी विद्यार्थिनी सुधा मनमे विस्मय करती कि डॉक्टर कहाँ से बात शुरू करता है और कहाँ उसका अन्त होगा यह कोई नहीं समझ पाता, लेकिन ऊपरसे कहती—'डॉक्टर तेल न कहिए सत् कहिए तो कुछ हर्ज होगा ?'

'नही, लेकिन,' डॉक्टरने बात काटकर कहा—'सत् तो स्वय कोई वस्तु नही, तुम असलमे शक्ति और चालनमे सुविधा देनेवाली वस्तुमें भेद कररही हो ...'

'नही, डॉक्टर!' वह कहउठी, 'मैं आपका मतलब समझगयी। आपने ठीक कहा है। मैं तो उसी बातको सरल शब्दोंमे समझनेकी कोशिश कररही थी।'

तब डॉक्टर सन्तुष्ट-से कहउठे—'तब तो तुम ठीक कहती हो। तुम बिल्कुल ठीक हो।'

और लम्बे चेहरेका हरिश्चन्द्र, जो अपनेको सबसे ज्यादा अक्लमन्द समझता, दोनोंकी बातें सुन-सुनकर मुस्कराता। वह कम बोलता और वास्तव मे इस मौनने उसे समाजमे काफी स्थिरता देदी थी। वह दिलमे सवाल-जवाब करता था और सोचलेता कि इस बातका यह सबसे अच्छा उत्तर है लेकिन 'यह' बात हमेशा उसे बादमें सूझती और गाड़ी छूटनेके बाद कौन नहीं चाहता कि वह भी मदरास चलाजाए, खासतौरपर अगर वहीतकका टिकट भी हो।

हरिश्चन्द्र गोरा और सजीला युवक था। उसे सदाही बिल्कुल नपे-तुले फैशनसे लैस देखकर लोग उसे एक धनी नवयुवक समझते थे। वह कौन था, क्या था, यह बहुत कमको ज्ञात था। जिस दिन सुधा उसके बॅगले पर गयी थी उस दिन केवल उसकी माँने उसका स्वागत किया था। एक बडी बहिन थी, लड़ाईमे 'वैकआई' बनगयी थी और हरिश्चन्द्र उसकी बात कहकर हॅसउठा था। सुधा कुछभी नही समझी थी। उसने विस्मयसे देख-कर कुछ सोचा था किन्तु फिर डूबते सूरजकी सुनहली किरनोंमे जब पेडोंकी लम्बी-लम्बी छायाओंसे घिरे वे चाय पीरहे थे क्षणभरको सुधा ठिठकगयी थी। उसने पहली बार देखा था कि हरिश्चन्द्र देखनेमे आकर्षक था। इससे अधिक उसने कुछ नही सोचा। रातको जब वह बहुत देरतक पढती उसने

देखा अवश्य था कि कैसे उसके घरके सामने जो स्कूलकी अविवाहिता मास्टरनी रहती थी बत्ती बुझाकर अँधेरेमे टहला करती थी अकेली-अकेली-सी और कभी-कभी कोई उसके पास रातके एक बजे आजाता था। सुधा सोचती एक बजेतक प्रतीक्षा! और जैसे उसके जीवनमे वह पहलू नही था, वह झट खिडकीसे हटजाती और उसकी निगाह अखबारपर जापड़ती। दुनियाका हर एक देश अपनी स्वतन्त्रताकेलिए युद्ध कररहा है और हिन्दुस्तानमें अभी तक ये मास्टरनी! तभी उसे डॉक्टरकी बात याद आती कि कोई भी देश तभीतक गुलाम रहता है जबतक उसके रहनेवाले स्वय पूरी तरहसे आजाद होनेके योग्य नहीं होजाते। बात उसके दिमागमें गूँजती और फिर डॉक्टर का अकेला जीवन उसके सामने चलने लगता। डॉक्टरका छोटा-सा मकान जिसका वह पन्द्रह रुपया किराया देता था। मकानदारकी चौबीसो घटेकी—लडाई-लडाई तककी—ईश्वरसे केवल एक प्रार्थना थी कि डॉक्टर कूँच कर जाये और वह मँहगायी और जगहकी कमीका फायदा उठाकर मकानको कम-से कम चालीस रुपयेमें उठादे, जो अपनी तरफसे वह करनेमे असमर्थ था—चूँकि सरकारके भारत - रक्षा - कानूनमे वही एक बात जनताकेलिए फायदेमन्द साबित होसकी थी। सुधा घृणासे नाक सिकोड़लेती। कैसे हैं ये लोग जो अपनी नीचताको अच्छे शब्दोंमें सजाकर कहनेसे बाज नहीं आते! और घडीमें दो घटे बजते, उनकी प्रतिध्वनि बनकर जेलका घटा बजता, जिसकी गूँजके समाप्त होनेके पहले कहीं औरसे ढन-ढनकी आवाज आती और क्षणभर शहरमें जैसे घन्टे ही घन्टे बजते और सुधा पैरोंपरसे लिहाफ गले तक खींचकर आँखे बन्द करलेती। तारे रातमें ठडसे सिकुडकर काँपने लगते, ठडी ठंडी हवा बहती रहती और थोडी देर बाद जमीन और आस्मान दोनो पलकोंकी तरह मिलकर अन्धकार, महाअन्धकारमें लय होजाते।

(२)

'दुनिया कभी सत्यको नही पहचान सकती, क्योंकि अपने-अपने

स्वार्थोंमे पडे मनुष्य कभीभी अपने दायरोंके बाहरकी बात नहीं सोचसकते।' डॉक्टरने धूपमें कुर्सी खीचकर बैठतेहुए कहा।

हरिश्चन्द्र सिगरेटका धूँआ उगलते-उगलते कहउठा—'क्या मतलब ? जरा स्पष्ट करियेगा डॉक्टर।'

डॉक्टरकी आँखोके नीचे गड्ढे पड़गये थे। उनका सुनहरी फ्रेमका चश्मा जो अर्द्धगालोंकी एक नुमाइश थी उनकी खाकी आँखोंके ऊपर एक अपने ही ढँगकी चीज थी। उन्होंने शाल अच्छी तरह ओढकर उत्तर दिया—'मनुष्य सकुचित है क्याकि वह अपनी सत्ताको बनाये रखनेके काममें अच्छा-बुरा छोडकर लगा रहता है।'

सुधा चुप बैठीरही। आज इतवार था। वह फुर्सतमे थी। लॉनपर ओस झलकरही थी। फूटती किरने पेडोके बीचमेसे ओसको पकडनेकेलिए झुकी आरही थी। दूर क्षितिजपर अबभी कोहरा जमाहुआ था, नीला-सा, ऊदा-ऊदा-सा। हरिश्चन्द्रके बँगलेका यह बराम्दा सडककी तरफ था।

डॉक्टर कहतारहा—'जानते हो न इस पञ्जाबी होमियोपैथ डॉक्टर को ? हजारोंमें खेलता है। क्विनीनको होमियोपैथिक दवा बताकर बाँटता है। M B 693 का पाउडर बनाकर उसे अपना चूरन बता-बताकर देता है, और लोग उसके पीछे भागते हैं। जबसे मेडीकल स्कूल कॉलेज होगया है डाक्टर मरीजोकी, लोगोकी बिल्कुल परवाह नही करते और फिरभी लोग उन्हींके पीछे दौडते हैं। हम लोगोके पास कोई नही आता।'

डॉक्टर एक शुष्क व्यगकी हँसी हँसा। सुधा ओवरकोटके जेबमे हाथ डाले बैठीरही। हरिश्चन्द्रने कहा—'लेकिन डॉक्टर, आपके पास आना न आना सत्यसे क्या सम्बन्ध रखता है ?'

डॉक्टर चिहुँककर बोलउठे—'ठीक पूछा है तुमने हरिश्चन्द्र, ठीक पूछा है। क्या जरूरत है लोगोको उन लोगोके पीछे भागनेकी जो रुपयेके

सामने आदमीकी परवाह नही करते ?'

हरिश्चन्द्र कहउठा—'बच्चे जरूर सवालोंको लेकर अभ्यास किया करते हैं, लेकिन जानका, जान-जैसी चीजपर लोग अभ्यास करना जरा कम पसन्द करते हैं।'

डॉक्टरको लगा जैसे हरिश्चन्द्रके मुँहसे बडा कडवा धूँआ निकल कर फैलगया। वह सुधाकी ओर देखकर कहनेलगा—'देखा सुधा, हरिश्चन्द्र हर चीजको खेल समझते हैं। एक बात बताऊँ किसीसे कहोगे तो नही ?'

दोनोंने आश्वासन-भरे नयनोंसे देखा। डॉक्टरने कहा—'कल शाम मेरे पास सुधाके घरके सामने रहनेवाली मास्टरनी आयी थी। वह दवा चाहती है कि समाज उसे ठीक समझता रहे। उसके कार्य्य पाप न होतेहुए भी समाजको ज्ञात होजानेपर जो पाप होजायेगे, इसीलिए वह उनको मिटादेना चाहती है।

'क्या बात ?'—सुधाने नासमझीसे पूछा—'क्या हुआ उसको ?'

डॉक्टर जोरसे हँसकर बोले—'अभी तुम नहीं समझोगी। क्योंकि तुमने अभी दुनिया नही देखी। मास्टरनी गर्भवती होगयी है और गर्भसे छुटकारा पानेकेलिए मुझसे दवा चाहती है, जैसे मैंने गर्भ गिरानेकी ही दवाएँ सीखी हैं और कोईऔर भला काम मैं नही करसकता। और इसके लिए उसके प्रेमी एक सेठके लडकेने पॉचसौ रुपया मुझे देनेको कबूल किया है, क्योंकि मास्टरनीके पास लडकेके प्रेम-पत्र हैं जिनके बलपर वह उससे शादी कर सकती है। किन्तु वह सेठके लडकेसे अपना सच्चा प्रेम बताती है और कहती है कि सेठके लड़केमे उतना साहस नही है कि मुझसे शादी करले। यदि मैं जोर दूँगी तो उसकी कमजोरीका नाजायज फायदा उठाना होगा, इसलिए मौजूदा हालातमे भ्रूण-हत्या सबसे ज्यादा ठीक रहेगी।

डॉक्टर एक जगली तरीकेसे हँसउठा। सुधाने पूछा—'और डॉक्टर, आप उसे मदद देगे ?'

डॉक्टर हठात् गम्भीर होकर बोले—'मैं नहीं जानता मैं क्या करूँगा। हरिश्चन्द्र तुम्हारी इस विषयमे क्या राय है ?'

हरिश्चन्द्र चुप बैठा था। उसने एक बार लॉनकी ओर देखा, सडक की ओर देखा, राह चलतोंपर नजर डाली, जैसे वह सबकी राय लेरहा हो, और फिर खाँसकर उसने कहा—'डॉक्टर, मैं नहीं जानता कि आप मेरे उत्तरसे मुझे कैसा आदमी समझेंगे।'

डॉक्टरने उसे ऐसे देखा जैसे उससे क्या, तुम्हे जो कहना हो कहो।

हरिश्चन्द्रने ऊपर देखतेहुए कहा—'बात असलमें एक है, और वह है मास्टरनीका भविष्य। बच्चे समाजमे इतने होते हैं कि हिन्दुस्तान उनमे से बहुतोंको नहीं चाहता। ऐसी दशामें सन्तानका प्रश्न बेकार है। अगर भ्रूणहत्या नहीं होती तो मास्टरनी या तो सेठपर जोर डालकर शादी करती है और सदाकेलिए जीवनकी कोमलता खोजाती है या फिर वह बदनाम होती है, नौकरीसे निकालदी जाकर भिखारिन होजाती है। एक पाप करने से अनेक विषमताओंका अन्त होता है, अतः वह काम भी बुरा नहीं रहता। अगर आप मेरी बात माने तो आप जरूर उसे कोई दवा देकर इस परेशानीसे उबारदे।'

डॉक्टरके दिमागमें सौ-सौ करके पाँच चोटे पड़ीं और सुधा फट पड़ी—'तो उसके इस कामकेलिए क्या सजा है ?'

हरिश्चन्द्र अविचलित स्वरमे बोला—'क्या यह काम सचमुच सजा देने लायक है ? आप कहेगी' यह दुराचार है। मैं मानता हूँ, लेकिन भूखा और पिंजरेमे बन्द क्या नहीं करता। जरा-सा दरवाजा खुला नहीं कि उडनेकेलिए झपटा। और नतीजेमे खटका गिरनेपर टाँगके बल घटों लटकता है। और मेरे विचारमे एक औरतकेलिए सबसे बडी सजा है कि वह जब माँ बननेवाली हो उसे स्वय अपनेही बच्चेका खून करना पड़े।'

उसने तीखे नयनोंसे सुधाकी ओर दृष्टि फेंकी। सुधाने पढा जैसे वह कहरहा हो कि यदि तुम उस जगह होतीं तो क्या करतीं ? और क्षण भरमें ही परिस्थितिकी गम्भीरता समझकर चुप होगयी।

डॉक्टर सोचतेरहे। फिर बोले—'लेकिन यह करनेके बाद भी तुम लोग यह न सोचना कि मैंने अपनी परेशानियोंसे तग आकर पॉचसौ रुपयो केलिए ऐसेही एक मनुष्यको मारडाला।'

हरिश्चन्द्र बोलउठा—'आप भी कैसी बाते करते हैं, डॉक्टर! सजा वही देता है जो अपनेको अपराधीसे अच्छा समझता हो। जिस समाजमे जिन्दे आदमी भूखसे मारडाले जॉय वहॉ एक अनजाने मासके लौंदेको मिटाडालना कोई बडी बात नही है। अगर पता चलजानेपर समाज मॉ और बालक दोनोंको ही सजाके अतिरिक्त कुछ नही देसकता तो क्यो न एककी ही जिन्दगी सुधारनेका प्रयत्न कियाजाय। मैं आपसे अपने दिल की कसम खाकर कहता हूँ कि आपकी इज्जत मेरे दिलमे फिरभी बनी रहेगी। और आप ही बताइए कौन-सा है वह इज्जतदार डॉक्टर जिसने इन्हीं कामोंके बूतेपर शुरूमे अपनी प्रैक्टिस स्थापित नहीं की ? एकबार नस पकडली, फौरन वहॉ 'फैमिली डॉक्टर' बनगये और फिर चलतीका नाम गाडी है।'

हरिश्चन्द्रने दूसरी सिगरेट जलाली। सुधा खोई-सी बैठीरही। डॉक्टर सोचतेरहे और सूखी डालपर काली चिड़िया गर्दन मटकाकर गातीरही। एक उत्तरहीन अभावपूर्ण सन्नाटा घहराकर धूपमें सुबकने लगा।

(३)

जब शामको सुधा इतवारको पुस्तकालय बन्द होनेके कारण घरपर ही बैठकर जी बहलाने लगी उसके दिमागमें तरह-तरहके विचार दौडने लगे। धीरे-धीरे एक धूँआ-सा कोहरा सॉसके साथ भीतर-बाहर छागया

और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकारका बहरापन आकाशसे एक कश-मकश करता बरसनेलगा। वह चुपचाप बैठी खिडकीसे देखतीरही। दूर दोतल्लेपर बिजलीके प्रकाशमे कुछ दर्जी लडाईकी वर्दियाँ सीरहे थे। वह प्रायः चौबीसों घन्टे काम करते और सुधा यही अचरज करती कि आदमी कैसे स्वय एक मशीन होजाता है। अब तो खैर जाडे हैं मगर गर्मी, बरसात सबमे वे उसही कमरेमे बन्द रहकर काम करते और करते

सुधाने देखा दूर और-दूर बिजलीके खम्भेके नीचे कुछ भिखारी टाटमें लिपटे बैठे थे और उसे मालूम था रात होनेपर वे वही टाटमे लिपटे लुढक जायेगे, सोजायेगे; सुबह उठकर फिर गन्दे मुँह, गन्दे बदनसे भीख माँगेगे और रात और दिनकी ठड खाकर भी उनका शरीर नही अकडता। जैसे कुत्ता बहुत ठड होनेपर कूँ-कूँ करके फिर मिट्टीमे सिमटकर सोरहता है और एक बार चाँदको देखकर जब अपनी छायासे उसे डर लगता है तो जोर से रोउठता है।

सुधा उन्मन होकर आसमानकी तरफ देखनेलगी। कुछ नही केवल कुछ तारे निकल आये थे। पृथ्वी घूमती है, वे राहपर आते हैं, दीखते हैं फिर ऐसेही नही दीखते और सुधाने दृष्टि नीची करली। लालटैनकी लौ तेज करके पासके सामनेवाली दूकानके हलवाईने कुछ आवाज लगायी और सुधाने देखा वही बूढा भिखारी और वही औरत खडे थे, चुपचाप, जैसे कोई मतलब नही। सुधा अक्सर उन्हे देखती और उसे उनमे कुछ कौतूहल होता था। औरत बिल्कुल पागल-सी थी। बूढा कभी कभी किसीसे बात करलेता था और एक सुबह उसने देखा था बूढेकी गोदमे सर रख-कर सडकके किनारे ही औरत सोतीरही। बूढा कभी उसके शरीरपर झुक कर भयङ्करतासे खाँसता और कभी ऊँघने लगता। औरत फिरभी न जागी, बूढा फिर भी न हटा, और आसमानसे चिल्ला गिरता रहा, किन्तु सुबह भी मरे नही थे उनका ध्वस नही होसका था। बूढा उसे लेकर चलपडा

था। ऊँचे उठे कन्धे और लटकी गर्दन, छोटा-सा कद, और स्त्री जो बगराती, सतराती और कदम-कदमपर ठोकर खाती।

सुधाने व्यथासे भरकर एक लम्बी सॉस ली और ऑखोको ढँक कर हाथोंसे मसलदिया और अन्धकारमे कमरेमे कुछ देखनेलगी। क्या हक है हमें इस तरह ठडसे बचकर रहनेका जब इतने आदमी न सोपाते हैं, न जिनका जगना है, न जिनका सोना है, जिनका जागना एक हाहाकार है, जिनकी नींद एक मूर्छा है .....

वह सोचनेलगी। मनमे अपने - आप भावना उठी कि क्या यह जीवित रहना एक पाप है? क्या हमे भी सब कुछ खोकर वैसाही होजाना है? जब सुख है तभी दुख है। लेकिन यदि दुख ही दुख है तो न कोई ईर्ष्या करनेवाला है, न कोई दूसरोंके लिए व्यथित होनेवाला। यह जो स्वय पीडित हैं, ये किसी औरकी चिन्ता नहीं करते, केवल इन्हे अपना ही ध्यान, अपने पेटका भयानक ध्यान-भर रहता है।

किसीके सीढी चढनेकी आवाज हुई और सुधा प्राकृतिक रूपसे ही पुकार उठी—'कौन? भइया?'

'अरे, अँधेरेमे क्यो बैठी है?' कहते हुए एक युवकने स्विच दबा दिया। एकाएक उजाला होजानेसे सुधाकी ऑखे पलभरको बन्द होगयीं और जब उसने ऑख खोलकर देखा तो भइया बिछेहुए बिस्तपर बैठे पैर हिलाते हुए सिगरेट जलारहे थे। दोनो एक - दूसरेको देखकर व्यर्थ मुस्कुराये और भइयाने एक बार धूँआ छोडकर कहा—'तूने सुना सुधा, मैंने नौकरी छोड़दी?'

'छोडदी! क्यों? कैसे! कब?' सुधाने घबराकर सवालोंकी बाढ मचादी। उसके दिमागमे एक उथल-पुथल मचउठी।

भइयाने नीची दृष्टि करके कहा—'कल मुझे तुमसे कहनेका वक्त ही न मिला। सेठ हरनारायणके लडकेने कल साढ़े - छः सौकी नौकरी

से इस्तीफा देदिया क्योंकि वे मेरे पीछे लड़गये थे। एक अँगरेजने मुझे बहुत बुरी गालियाँ दी थी और जब रिपोर्ट कीगयी तो सब बडे अङ्गरेज अफसर उसहीकी तरफ बोलनेलगे। उनके छोडनेके कारण मैंने भी छोडदी।'

बात खत्म होगयी, किन्तु फिरभी इसलिए खत्म नहीं हुई, क्योंकि बातका समाप्त होजाना आगेके जीवनका हल किसी तरह भी नही निकाल सकता था। सुधाने धीरेसे कहा—'अँगरेजोंका बर्त्ताव तुम्हीसे बुरा था या सबसे?'

'सबसे। किन्तु मैं इसे सह नही सका।' आज भइयाके आदर्श त्याग का महत्त्व सुधाकी समझमे नहीं आया। वह स्त्री थी और उसे अपनेपनका कही अधिक खयाल था। अँगरेज कौनसी ऐसी बात कररहे हैं जिसमे हिन्दुस्तानियोंकी इज्जत बढरही थी। जब आदमी नौकरी करने जाता है पेटकेलिए तब इज्जत तो वह पहलेही छोड़ आता है। या तो खुलकर बगावत करे, या करे ही नही। सब एक-दूसरेसे हुजूर कहते हैं क्योंकि कहना पडता है।

और उसने भइयाकी ओर देखा जो ऐसे बैठे थे जैसे मैंने जो किया है उसकेलिए बिल्कुल लज्जित नही हूँ। मैं कुत्ता नही हूँ जो टुकडोकेलिए ठोकर खाता फिरूँ। दोनोंने एक-दूसरे को देखा और दोनोंने एक-दूसरेके विचारोंको आँखोंसे ही पढ़लिया।

सुधाको उसपर दया-सी होआयी और भइयाको एक उलझी-सी झुँझलाहट। सुधाने कहा—'मुझे कल दो महीनेकी फीस दाखिल करनी है।'

भइयाने हँसकर कहा—'अरी कलतक मैं हँसता था कि घरमे अखबार लेकर तू पुस्तकालय जाती है, मगर शायद जल्दही अब तुझे पुस्तकालयमे ही अखबार पढनेपर मजबूर होना पड़ेगा।'

सुधा थोड़ी देर चुपरही। उसने कहा—'अब?'

भइया बोले, 'अबके अमरीकनोंमे कोशिश करूँगा। जल्दीही मिलेगी। सौ न सही, पचास ही सही—दो सौ तो अब क्या मिलेगे—मगर

मिलेंगे तो ! सुनते हैं अमरीकन अङ्गरेजोंके मुकाबिलेमें अच्छे हैं ।'

सुधाको विश्वास नही हुआ । होंगे भी तो मुकाबिलेमे ही हो सकते हैं । वैसेतो जो नौकरी देगा वह जरूर दाबना चाहेगा, तबतक जबतक नौकर मालिकका फर्क न मिटजाय ।

भइया हॅसपडे । बोल उठे, 'अरी तू क्यों घबराती है पगली । सोचती होगी सेठजीके लडकेने ठोकर मारी तो उनका दूसरा पैर भी मजबूत था, यहॉ तो झनझनाहटसे ही गिरगये । तेरा तो ब्याह मैं कर ही दूँगा कहीं अच्छी-सी जगह और फिर-की-फिर देखी जायगी । अकेलेकी क्या है ? मगर तू न कहेगी, अपनी पसन्दसे करूँगी मैं तो ··पढी-लिखी जो है न ?' और भइया ठठाकर हॅसपडे । सुधा लाजसे मुस्करा उठी । मजबूरियोंमे भावी सुखकी यह कल्पनाऍ जो कभी पास नही आतीं, और जीवन सरकता चलाजाता है ! कैसी मृगतृष्णा ! कैसी मरीचिका ! अनन्त अधकार, आकाश मे धू धू जलता निर्धूम उन्माद, या पागलपन

—४—

डॉक्टरने सुधाकी दो महीनेकी, तथा इम्तहानकी फीस शीघ्र वापिस मिलजानेके वायदेपर तकल्लुफ दिखातेहुए देदी और उस दिन सुधाने पत्थरो के नीचे दबे दिलमे पहली बार एक कचोट महसूस की जिसमे बन्धनोंकी पीडाका वेग होता है । वह थोडी देर देखतीरही और डॉक्टरने उसकी ओर न देखतेहुए अपनी सिगरेट जलाकर चुपचाप एक लम्बी सॉस ली ।

सुधाने अपने होठोंपर जीभ फेरी और एकाएक पूछबैठी—'डॉक्टर मनुष्य सुखी कब होता है ?'

डॉक्टर जैसे तैयार नहीं थे । उन्होंने चौंककर उसकी ओर देखा और वे धीरे-से कहउठे—'जब मनुष्य कुछ नही चाहता, जब उसे कोई चिन्ता नहीं रहती ।'

'यानी जब आदमी मरजाता है।'

डॉक्टर फिर चौंके। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसे घूरते रहे, जैसे क्या मतलब ?

सुधाने उनका मतलब समझकर झिझकते-झिझकते कहा—'डॉक्टर, मनुष्य सदा चिंतित रहता है। आप मनुष्यके शरीरकी सारी बनावट जानते हैं, इसीसे आपसे पूछती हूँ। आदमी कभी चैनसे नहीं रहता। वह क्यों कुछ करना चाहता है ?'

'क्योंकि वह रहना चाहता है ?'

'लेकिन क्यों ?'

'क्यों ! क्योंकि वह पैदा होता है।' जैसे डॉक्टरने सारी समस्या सुलझादी।

'यही तो पूछती हूँ डॉक्टर,' सुधाने दृढ़तासे कहा—'वह पैदा क्यों होता है ?'

'क्यों होता है ?' डॉक्टर हँसपड़े। उन्होंने कहा—'यह तो मैं नहीं बता सकता कि क्यों होता है। डॉक्टर होनेकी हैसियतसे यह जरूर बता सकता हूँ कि कैसे होता है। और यह 'कैसे' ही वास्तवमें 'क्यों' का पहलू अपने में छिपाये है। यह 'कैसे' ही 'क्यों' का असली उत्तर है। बिना 'कैसे' के 'क्यों कभी सामने नहीं आता, क्योंकि केवल 'क्यों' एक दुःस्वप्नकी घुटती पुकार है जिसका जवाब आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक भी नहीं निकाल सके और वह अबभी 'कैसे' में ही उलझरहे हैं। 'क्यों' का उत्तर बहुतोंने दिया है, किन्तु आगे आनेवालेने उन्हें ही काटदिया और 'क्यों'का उत्तर सारहीन हाहाकार-मात्र रहसका।'

सुधा देखतीरही। डॉक्टरका जादू आज उसपर असर करनेमें असफल होगया। उसके मनको तृप्ति नहीं हुई। मनुष्य जो चाहता है वही

नहीं होपाता, जहाँ वह घास समझकर पैर रखता है वही कीचड़ निकलता है। और उसका पैर आगे बढनेकी बजाय धँसा रहजाता है।

डॉक्टरने सिगरेट फेंककर यूरोपियन ढङ्गसे कुछ अशराफ जम्भाइयाँ ली और दोनों हाथोंको सीधा किया और उद्विग्न-से कमरेमे टहलनेलगे। कभी-कभी वह सुधाको देखते थे और जैसे कुछ कहना चाहते थे किन्तु शब्द न मिलनेके कारण परेशान थे।

सुधाने ही मौन तोडा। उसने पूछा—'डॉक्टर, मास्टरनीका क्या हुआ?'

'होता क्या?' उन्होंने मेजपर टिककर कहा—'जो होना था वही हुआ।'

'यानी? घड़ीके अलारमकी तरह सुधाकी बात टनटना उठी।

'यानी दवाने उसके पापको धोदिया, लेकिन आजही सुबह ऑपरेशन करके मुझे एक और काम करनापडा। वह दवाएँ गलत तौरपर पागयी और जहरने गर्भाशयमे प्रवेश करलिया। इसलिए मुझे उसकी चीरा-फाडी करनीपडी और अब वह कभीभी माँ नही बन सकेगी, चाहे तोभी नहीं। इसकेलिए सेठके लड़केने मुझे पाँच-सौकी जगह कुल तीन-सौ रुपया दिया है। ज्योंही उसे मालूम पडा कि बच्चा नही रहा उसने मास्टरनी से कुछ कहा। ऑपरेशनके बाद जब कोईभी डॉक्टर उसकी देख-रेख करसकता था उसने मुझे कुल तीन-सौ रुपया दिया और वह मास्टरनी एकदम चुप होगयी। दोनोंने मुझपर जुर्म लगाया और मास्टरनीने कहा कि मेरी ही ग़लतीकी वजहसे वह अब औरत नहीं रही।'

डॉक्टर पराजित से हँसपडे। फिर कहउठे—'रुपया मैं जीवनका सबसे बडा उद्देश्य नही समझता। मैंने उनके भलेकेलिए किया था वह सब, लेकिन……'

सुधाने बात काटकर कहा—'तो भला तो आप करचुके न ? फिर कैसा अफसोस ? कर्म करना ही तो आपके अधिकारमें था। फल न मिला, न सही।'

डॉक्टर तिलमिला उठा। इस समय वह चाहता था कि कोई उसकी प्रशसा करे और उसीकी एक शिष्याके समान लडकीने उसके मर्मपर ऐसी चोट की थी। उसने आहत स्वरमे कहा—'यह रुपया नहीं था, मेरी मेहनत का फल और उनकी ईमानदारीकी परख थी।'

सुधा निराश होगयी। उसका व्याकुल हृदय भीतर-ही-भीतर चिल्ला उठा—'यह सब झूठ है। यह सब झूठ है।' किन्तु फिर कॉलेजकी फीस जेबमे पुकारउठी—चुप ! चुप !

—५—

भइयाकी नौकरी सचमुच लगगयी। वे सुबह साढे छः बजेके कड़कते जाड़ेमे घरसे चलदेते और शामके पाँच-साढ़ेपाँच बजे तक लौटते। एकसौ बीस रुपयेकी तनख्वाह बुरी नही होती। तीन ही दिनमे यह कहीसे रुपये लेआये और डॉक्टरको सुधाने बड़े-बडे धन्यवाद देतेहुए लौटादिये। सुधा ने अपनी एक पुरानी जरसी उधेड़कर उनकेलिए दस्ताने बनादिये ताकि साइकिलपर जाते वक्त हाथ न ठिठुर जॉय और रातके परॉवठे लेकर वह गये गये कि फिर शाम तककी गयी। मगर हालत बदस्तूर गिरीरही। पूरा महीना बिना पैसेके चलाना था। घरमे आटा था, मगर इधर सब्जीके बढ़े दामोपर पैसा डालना कठिन था, कि दूध-दही सुपना होरहे थे। दरिद्रताकी यह छाया सुधाके मनपर वैसीही चढ़ी जैसे चूल्हेपर चढ़े बर्त्तनके तलेपर कालिमा। अखबार बन्द करदिया गया। पहले जो दो-सौ आते थे उनमे पाई-भर भी बचाना हराम था। रसोई करनेवाली निकालदी गयी और वह भार सुधापर ही आपड़ा। घर और बाहरके बोझकी कशमकशमे उसकी आत्मा

अवरुद्ध सी छटपटा उठी। शामको वह भइयाको खाना खिलाकर पुस्तकालय जानेलगी और इस कारण लौटतेमे कभी-कभी अँधेरा भी होजाता किन्तु अब अखबार पढतेमे उसे सान्त्वना-सी मिलती जैसे यह सब एक महान् सग्राम था जिसका परिणाम मुक्ति है, मनुष्यकी मुक्ति।

किन्तु हरिश्चन्द्र धीरे-से मुस्करा उठा। उसने कहा—'तुम समझती हो सोवियटमें सब सुखी हैं?'

'मैं नही जानती, मगर तुम सुख कहते किसे हो?' उसने पूछा।

'मैं?' हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया। 'सुख और दुखको केवल ससर्गसे उठनेवाली प्रतिक्रिया समझता हूॅ। साथ-साथ हैं तो यह है, वह है, दूर-दूर हैं तो न यह है, न वह है, और यह वह कुछ स्वार्थकी सिद्धि सफल है तो सुख है, नहीं है तो दुख है।'

सुधाको यह उत्तर अच्छा लगा। एक बार मनमे आया अपने घरेलू कष्टोंका उससे बखान करके जी हल्का करले। किन्तु फिर सहसा ही हिम्मत नहीं हुई कि कहीं इसमे कोई अपना अपमान न हो, कही हरिश्चन्द्र उसे ग़रीब न समझले। हरिश्चन्द्र बकता रहा—'ससर्ग ही सब कष्टोकी जड है। मैं एक जमीदार हूॅ, छोटा-मोटा। कभी अपनी जमीन देखने तक नही जाता। जो आज गरीब किसान है उसे कभी यह मालूम नहीं होता कि एक मिस्टर हरिश्चन्द्र भी होंगे जो मेरी मेहनतके बूतेपर सिगरेट पीरहे होंगे। मगर जो है सो तो है ही। वह सब भी ठीक है। पैसा है तो सब कुछ है, नही तो कुछ भी नहीं।'

सुधाने उसकी ओर देखा। अनजानमे ही उसकी दृष्टिमे एक स्नेह छलछला उठा था। नारीके मनकी अनजानी वेदनाको निर्दोष रूपमे प्रगट करदेनेवाला पुरुष कम से कम एक प्यार भरी दृष्टिका उत्तराधिकारी अवश्य होता है। हरिश्चन्द्रने निर्भय स्वरमे कहा—'मेरे मना करनेपर भी मेरी बहिन 'वैकआई' है और मैं जानता हूॅ उसकी टॉमियोसे दोस्ती है, लेकिन क्या

करसकता हूँ मैं ? वह मुझसे पैसा नहीं चाहती, कुछ नही माँगती, किस तरह दबा सकता हूँ उसे ?'

इतनी बड़ी बात कहकर भी उसे सङ्कोच नही था। उसने बातको समाप्त करतेहुए कहा—'मैं उसका भाई अवश्य हूँ, किन्तु उससे घृणा करता हूँ क्योंकि वह मुझसे घृणा करती है। वह पुरुषोंसे घृणा करती है और फिर भी पुरुषोकी ओर खिंचती है। जिस आदमीसे वह प्रेम करती थी वह एक अङ्गरेज था जिसने उसे एक ठोकर मारदी थी और एक बच्चेकी माँ बनने केलिए छोड़गया था। वह माँ नही हुई, लेकिन पुरुषोपर उसने कभी विश्वास नही किया और मैं कोशिश करके भी उसे चाह नही सका।

सुधा निस्तब्ध बैठी सुनतीरही। कैसे हैं ये लोग! कोई एक-दूसरे से प्यार नही करता! केवल अविश्वास, केवल घृणा! और परस्परका व्यवहार केवल एक धोखा, या फिर अत्याचार! पार्कमे उस दिन चाँदनी फैलीहुई थी। दोनो बेंचपर बैठे बातें कररहे थे। मादक हवा चलरही थी। बात करते-करते हरिश्चन्द्रने सुधाका हाथ पकडकर कहा—'एक बात बतलाओ सुधा! क्या तुम बहुत सुखी हो? मैंने तुम्हे सदा एक जिज्ञासुके रूपमे देखा है। तुम हो, तुम्हारे भइया हैं। मैं धनको बहुत बडी चीज मानता हूँ। आज जो अविद्या, गँवारपन, कमीनापन और जाने क्या क्या है यह सब धनहीनता के कारण हैं, सब धनके भेद हैं। मैं नहीं जानता मैं कहाँतक सही हूँ, किन्तु तुम सदा मुझे सुखी दीखती हो।'

सुधा एकाएक हँसपडी। कैसा भोला है यह युवक? जो हाँ ना का फरक सुनकर नही पहचान सकता। उसने अपने सामने एक बालक देखा। अनजाने ही उसके कन्धेपर हाथ रखकर वह बोलउठी—'अरे हम लोग असलमे गरीब आदमी हैं, गरीब आदमी। सुखी हम कहाँ? सुखकी बातें तो तुम लोगोंको करनी चाहिए, जो जमीदार हैं, बड़े लोग हैं। हम तो जिन्दे हैं, जिन्दे!'

'मैं जमींदार ?' और हरिश्चन्द्र ठठाकर हँसपडा। 'बडा आदमी ? शायद कपडे देखकर लोग ऐसेही गलत खयालोंमे पडेरहते हैं ? बङ्गलेमे रहता हूँ जो ! और सब, सब कर्जेसे लदा है, गले तक कर्जा है, कर्जा, कमीने सेठोंने छोडा ही क्या है '

और वह जोरसे हँसपडा। उसकी भर्राई हँसीमे उसका आहत अभिमान टुकडे-टुकडे होकर शीशेकी तरह चाँदनीमे चमकउठा था। वह फिर कहउठा—'सोचती होगी जान-जानकर और क्यों फँसते हो ? मगर जिसके मुँहमे खून लगचुका हो वह घास नहीं खासकता। यह रोगी तपेदिकसे मर कर ही चैन लेसकता है, इसका इलाज असम्भव है। बिल्ली दूध पी नहीं पाती तो लुढकाये बिना उसे चैन कब मिलता है। एक खानदानकी इज्जत भी तो होती है न ? माँ तो अभीभी अपनी ऐंठन उसीपर कायम रखसकी हैं।'

और वह फिर वही जहरीली हँसी उगलउठा। सुधा निस्पद सुनती रही। किला धपसे मिट्टीमे बैठगया था। चारो ओर धूल ही धूल उड़रही थी। वैभवको अन्धकारने डमलिया था।

—६—

दूसरे दिन सुबह ही सुधा डॉक्टरके घरकी तरफ चलपडी। डॉक्टर बैठे कुछ सोचरहे थे। इतनी सुबह सुधाको देखकर उन्हे कुछभी अचरज नहीं हुआ। सुधाको रातभर नींद ठीक न आसकनेके कारण उसकी पलकें भारी होरही थीं और डॉक्टरके सन्देहकी इमबातने पुष्टि करदी। वह अप्रसन्न-सा मुख लिये बैठरहा। सुधा अपने आप कुर्सी खींचकर बैठरही।

डॉक्टरने देखा—कैसी सीधी बनकर बैठी है। लेकिन कल शामको सीधी न थी जब पार्कमें चाँदनीमे हरिश्चन्द्रके साथ हाथमें हाथ डाले बैठी थी। अनजाने ही डॉक्टरकी इस नारीके प्रति दबी वासनाएँ इस अचानक पराजय पर भडककर ठोस विद्रोह और प्रतिहिंसा बनकर खड़ी होगयीं जैसे आज वह

कुछ सुननेको तैयार न था। सुधा चुपचाप बाहर देखती रही। उसने कहा — 'डॉक्टर जीवन कितना कठिन है!'

डॉक्टरके मुँहपर व्यंग्यसे एक मुस्कान खेलगयी। उन्होंने कहा— 'परिस्थितियोंकी उलझनको सुलझन बनादेना ही मनुष्यका सुख होता है सुधा देवी! ठीक है न?'

सुधाने चौंककर डॉक्टरकी ओर घूरा। किन्तु डॉक्टर बेताब होकर उठखडा हुआ। मेजकी दूसरी ओर धीरे-धीरे जाकर हाथ बाँधकर वह खड़ा होगया। सुधाने सुना— वह कहरहा था—'जान-जानकर गलती करनेवाले को कोई क्षमा नहीं करसकता। मैं सब जानता हूँ, सब देखचुका हूँ। दवा लेने आयी हो सुधा? मैं नही देसकता। तुम भलेही मुझे कुछ कहलो। मेरे लिए एक बारकी भूल काफी है, बहुत काफी है। मैं बार-बार वैसी गलती नहीं दुहरा सकता। मुझे तुमसे कोई हमदर्दी नहीं है। यदि तुम पाप करते हुए नही हिचक सकती तो समाजको तुम्हे दण्ड देनेका पूरा अधिकार है।'

सुधा कुछ नही समझी। वह बोलउठी—'कैसा दण्ड? कैसी दवा? क्या जानते हैं आप डॉक्टर?'

'तुम मेरी आँखोको नहीं झुठा सकती सुधादेवी! मैंने आँखोंसे तुम्हे हरिश्चन्द्रके साथ पार्कमे कल रात देरतक बैठे देखा है। अगर चाँदनीका दोष है तो मैं कोई दवा कैसे देसकता हूँ? है तुम्हारे पास पाँच सौ रुपया? डॉक्टर लक्ष्मण तुम्हारे कृपा-कटाक्षोंका न भिखारी था, न है, न रहेगा। जाओ, मैं तुम्हारी कोई मदद नही करसकता।'

'ओह, समझी। तो आप मेरी कोई मदद नही करसकते?' सुधा एकदम ठठाकर हँसपडी। निर्दोष कभी किसींसे नही दबता। 'तब तो आप बडे समझदार हैं। डॉक्टर तुम्हारा भेजा सड़गया है और तुम उसकी बदबू से परेशान होकर समझते हो कि सारा ससार सड गया है। बेवकूफ, तुम्हारे समाजमे हरएक पापका न्याय देनेकी ठौर है, और इसीलिए आज सत्ता

केलिए विषमताओंके इस कारागारमे पाप ही पुण्य होगया है। इतिहास इसकेलिए तुम्हे कभी भी क्षमा नहीं करसकेगा।'

वह अपने अपमानसे विक्षुब्ध-सी फुङ्कार उठी थी। डॉक्टर हत-बुद्धि-सा देखता रहा। सुधा तेजीसे उसके घरसे निकल गयी।

बाहर हवा ठण्डी थी, तेज थी। राहके लोग कपडोंकी कमीके कारण सिसकारी भरते-से चलरहे थे। ढालके किनारेके ताल पर कुछ बच्चे ढेले फेंकरहे थे। ढेला गिरते ही काई फटजाती थी, फिर उसके डूबनेपर जुड-जाती थी। बच्चोंके ढेले कभी उस तालकी काई नही फाडसके। और तालकी काईपर मच्छर रहते हैं, भनभनाते हैं—जहरके छोटे-छोटे कातिल टुकडे, लेकिन दूरसे ताल कितना सुन्दर लगता है, कितना मोहक··· · जो भीतर-ही-भीतर सडचुका है ·· · गल चुका है · ·· दुर्गन्ध और घृणाकी एक दलदल-सा, जीवनकी कलुषित पराजय-सा······ निर्वीर्य······ निर्जीव ·· ··

नरक

१

मैं एक चौमंज़िला मकान हूँ

उस मकानको देखकर यही लगता है कि वह किसी मुगलने सरायके रूपमे बनवाया होगा, मगर कालांतरमे उसपर काई जमगयी और वह काला होगया। तब कुछ दिन तो उसके बारेमे यह अफवाह उडी कि वह लालाओं की बगीची होगया है। मगर उसके भाग्यमे इज्जत बची थी कि उस नामको पूर्णतया सफलतापूर्वक अपने ऊपर सिद्ध न करसका और वह ऐसा न रहा जहाँ शामको रोज भग घुटती। इसके कारण तो कई थे, मगर किस्सा असलमे यह था कि टॉमसन साहब जिनकी कि नीलकी कोठियाँ थी उनके नाती हैरिसन साहब कोठियोंके बन्द होनेपर खर्चा न चला सकनेके कारण पहले महायुद्धके समय उसको लाला हरदयालके नाम बेचगये थे। और जो हरदयाल जवानीमे सरपर पट्टे, लम्बी कलम, चिकनका अगरखा और काली किनारी की धोती पहनता था अब बुड्ढा होकर नतिनीकी धोती पहनता है। कन्धेपर पापका गट्ठर है और मुँहमे गाली। बेटे और नातीसे चिढ है क्योंकि उन्हे कमा-कमाया धन मिलजायेगा। इसलिए घरसे अलग रहता है। धुँधली होगयी हैं, आँखे मगर मजाल है कोई उसपर खोटा रुपया चलाले। वह दो रुपये लेकर ससार पथपर चला था, आज लाखोंकी जायदाद खड़ी थी। क्या नही किया जवानीमे— जूआ नहीं खेला कि शौक नहीं किये: मगर जो किया अपने बूतेपर किया। किस चीजसे रुपया नहीं कमाया? चुङ्गीके चुनावमे उसीको वोट दी जिसने सबसे ज़्यादा रुपया दिया। बीमा कराया दूकानका, और आग लगाकर जल्दी ही तमाम रुपया लेलिया। धेली बिना

सूद खाये वापिस नही ली —जैसे राजपूतकी तलवार एक बार निकलकर बिना खून पिये फिर म्यानमे नही घुसती।

मकानके चारो तरफ एक बडी बगीची है जिसके एक ओर लम्बा मैदान है सरकारी। बगीचीमे अनेक पेड हैं: कहीं आमके, कहीं जामुनके, कहीं घनी छाँह, कही बिल्कुल नही। दो-एक नल हर जगह नजर आ ही जाते हैं, और मकान बडी अजीब तरहसे बनाहुआ है। यो कहिए कि वह चारों ओरको बनाहुआ है। चार मजिल हैं। नीचेकी कोठरियोंमे गरीब लोग बसते हैं।

आज हरदयालको यही रहतेहुए पैंतालीस बरस होगये, किन्तु उसे सिवाय रुपयेके और किसी बातकी चिन्ता नही। बगीचीके मन्दिरमे ही वह अक्सर बैठा रहता है। मकानको देखकर लोग अचरज करते हैं। युगान्तर से वह स्तब्ध मूर्त्ति खडी है। पखी पत्तांमे घुसे रहते हैं, जानवर उसकी मोरियों और छज्जोंके बीच या पीछे और नीचे।

पूछा है--तू कौन है? और वह प्रतिध्वनि कर पूछता है—तू कौन है? मानो पूछनेका अधिकार सबको नही होता। मगर कभी-कभी रातके सनसन समीरणकी श्रिल-श्रिल ध्वनिमे कोई कहने लगता है—मैं मकान हूँ, मैं समाज हूँ, मैं मानव हूँ सबही तो मुझमे हैं। न में पथका आदि ही हूँ, न अन्त ही।

—२—

पहिली यातना: ग़दर

सुधीर अपने कमरेमें पड़ा-पड़ा दीवारपर मकडियोंकी कारीगरी देखता रहा। एक दिन था जब उसके पास सबकुछ था। किन्तु आज वह केवल एक क्लर्क था। कॉलेजमे जो गर्म गर्म बहस की थी उनका नतीजा आज केवल पंतालीस रुपयोंका भयानक बोझा था।

उसने मन-ही-मन कहा जो नही जानता वह भी पिसना नहीं चाहता, पर जो जान-जानकर पिसता है वह कितना निर्बल है ! आज पराजय और परतन्त्रताने उसे कुचल दिया था। यह भी तो सामाजिक जीवनका एक गदर ही था। बगलमे ही एक कमरा लेकर मिडिल स्कूलके मास्टर साहब रहते थे। वे अक्सर कहा करते—'देखिए सुधीर बाबू, अपनी मर्जीसे कुछ नही होता। हमारे पिता एक जमींदार साहबके यहाँ कारिन्दा थे। तनख्वाह आठ रुपये महीना पाते थे। मगर ऊपरी आमदनी इतनी थी कि हम दसवे दर्जे तक बेखौफ पढ़े। उसी साल वे स्वर्गवासी हुए और हम नौकरी ढूँढा किये। मगर नौकरी? रामराम! हमारे पिता अङ्गरेजी एक अक्षर नही जानते थे, लेकिन काम, बडे-से-बडे काम, उन्होने इशारेपर चलाये। बडे साहबसे मिलना, कलक्टर साहबसे मिलना। हमने उनकी तमाम कमायी धूलमे लुटादी, और फिरभी कुछ नही। तब प्राइवेट ट्यूशन करना शुरू किया, और आज आपकी दुआसे मास्टर होकर दिखादिया।

सुधीर सुनता और कुढता। मास्टरका जीवन इतना दयनीय था कि उसे उसपर घृणा होआती थी। मगर मास्टर था कि कभी उसके मुँहसे कोईभी शिकायत नही निकलती थी। नीचेकी मजिलमे यही दो कमरे अच्छे थे। उनके नीचेही ग़रीब लोग रहते थे। उनकी कोठरियोंकी दुर्गन्ध कभी-कभी उसके कमरेमे भी आघुसती थी। ऊपर ही कुछ अच्छे कमरे थे, और उनमे कौन रहता था यह, यद्यपि वह जानता था, वे लोग नही जानते थे, न उन्होने कभी उसे बुलाया ही। अपने यही ले देके पढ़े-लिखोमे एक मास्टर साहब थे, और या फिर वे मजदूर जो पहले तो उससे डरते थे मगर धीरे-धीरे दोस्त होचले थे। उन्हे मालूम था कि बाबू सिर्फ पैंतालीस रुपये पाता है। दोनो वक्त खाकर, खास तौरपर साफ कपड़े पहननेको उसके पास कुछ नहीं है। और इसमे उसका कोई दोष नही, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा है।

सुधीरका असन्तोष उसकी अपनी अभिशप्त विवशता थी। वह मन-

ही मन कुढ़ता कि कोई ऊपरवाला उससे कभी भी बात नहीं करता। जब कभी वह मास्टर साहबसे कविताकी बात करने लगता, मास्टर साहब सुनाने लगते, "अजी साहब, अब तो लोगोंको कविताका शौक़ ही नही रहा। पहले जब हम पढते थे तो वह वह अन्ताक्षरी होती थीं कि देखनेवाले दङ्ग रहजाते थे। अबभी जब गॉव जाते हैं एक-आध तो जम ही जाती है।"

और सुधीर वही बात खत्म करदेता। किन्तु मास्टर साहब कहते— 'सुधीर बाबू, कवि तो गिरधर हुए हैं। क्या क्या कुण्डलियॉ कही हैं! वाह, लाठीपर तो कमालकर दिया है!'

सुधीर क्रोधसे दूसरी बात छेडदेता। मास्टर साहब फिरसे सहयोग देने लगते।

× × ×

किसीने द्वारको थपथपाया। सुधीरने पडे-पडे ही पूछा—'कौन है?'

'अरे भाई मैं हूँ'—कहतेहुए खडाऊँकी खट खटसे कमरेको गुँजाते हुए मास्टर साहब घुस आये। सुधीर खाटपर बैठगया। मास्टर साहब भी बैठगये।

'क्यो कुछ तबियत खराब है क्या?' मास्टर साहबने धीरेसे पूछा।

'हाँ कुछ ऐसीही थी।'

'सो ही तो मैंने कहा। दिया जले ही तुम तो आज खर्राटे भरनेलगे।'

मास्टर साहब हँसदिये। सुधीर मन-ही-मन भुनभुनाया। आज मास्टर साहब कुछ प्रसन्न-से थे। अपने आप बोले— 'तुमने सुना यार?'

'नही तो, क्या हुआ?'

'ओ, कोई खास बात नहीं,' मास्टर साहबने उपेक्षा दिखातेहुए कहा—'ऐसे ही।'

'तो भी तो ! कुछ हम भी तो सुने ?'

'आज बुलाया था ।' मास्टर साहबने ऊपर इशारा करतेहुए कहा । 'हॉ !' और फिर सिर हिलाया, उनकी चुटियाने उनकी गर्दनको दो-चार हल्की-हल्की थपकियॉ भी दीं ।

सुधीरने विस्मित होकर पूछा—'यार किसने बुलाया था ?'

'ऊपर जो बाबू रहते हैं उन्होंने ।' मास्टरने गर्वसे कहा ।

'क्यों ?'

'उनकी एक छोटी सी बच्ची है । उसे हिन्दी पढानी है । उस्ताद, चार रुपये महीना देंगे । घरके घरकी बात है । हम तो कहते हैं मेल-जोल बढ़ेगा तो अपना ही तो फायदा है। क्यों, है न ?'

सुधीरने मास्टर साहबकी प्रसन्नता देखी और उसने सिर झुकालिया।

मास्टर साहब हर्षित-से कहतेरहे--'आदमी बडा सज्जन है । पॉच सौ पाता है, मगर घमण्ड छू तक नही गया । साहब, यह तो खानदानका असर होता है । आप अपने अच्छे खूनके हैं तो रुपयेकी गर्मी आपको जल्दी नही चढ सकती । परमात्मा देता उन्हींको है जो वास्तवमे योग्य होते हैं ।'

सुधीरके दिमागमे बडी बड़ी कब्रे थीं । यह बात भी उसके दिमाग़ मे एक लाश बनकर उतरगयी ।

—३—

दूसरी यातना : ईश्वरकी दया

मन्दिरमे झॉझ बजतीरही । रातके एक बजे तक कीर्तन होतारहा । कहनेको तो सेठ रामलालने भी आनेको कहा था किन्तु वह अभीतक नहीं आये थे । उनके पिताने खोन्चा लगा लगाकर इतना रुपया इकट्ठा करलिया

था कि नौ बेटोंके अलग-अलग मकान खडे थे। बेटोंकी बहुएँ आयी-थीं। जबसे पाँचवीं बहू आयी घरमें बँटवारा शुरू होगया। घनश्याम सिर पीट कर रहगया। बहू मिडिल-पास थी। तब लोगोंने समझाया कि पढ़ी लिखी लडकियाँ ऐसीही होती हैं।

झाँझ बजतीरही और राधे-राधे श्याम श्यामका सम्मिलित स्वर गूँजतारहा।

सुधीरको लगता जैसे दिनभरके शोषणके बाद यह प्रयत्न वैसाही था जैसा कि कोई विद्यार्थी सालभर तो कुछ नहीं पढे और इम्तहान पास आनेपर ईश्वरसे कहे . मुझे पास करदे, मुझे पास करदे। किन्तु मास्टर साहब कहते—'पुण्यकी बात है। भगवानका स्मरण है। औरकुछ तो कलियुगमें कर ही नहीं सकते, नाम तो ले लेना चाहिए। जमाना ही बदलगया है तो कोई क्या करे?'

राधेश्याम राधेश्याम, श्याम श्याम, राधे राधेका अविरत स्वर पीपल के पेडमें खडखड पैदाकर स्याहीवाले आस्मानकी सलेटी-सी छायामें डोल उठता था। धीरे-धीरे एक बूढा आकर स्वरमें स्वर मिलाने लगा। उसको देखकर पास बैठा घीसा जरा खिसककर भीडमें मिलगया और धीरे धीरे हटने लगा।

ज्योंही घीसा द्वारपर पहुँचा, हट्टे-कट्टे बुटमडे बाबाने पूछा—'घीसा, कहाँ चला?'

'कुछ नहीं। जरा योंही। अभी आया।' उसने सकुचते हुए कहा।

किन्तु बाबाने उसका हाथ पकडकर कहा—'तुम्हारी कसम, जाना नहीं।'

घीसाने अपराधीके स्वरमें कहा—'अच्छा तो चलो, न जाऊँगा।' उसके शरीरमें एक सिकुडन-सी दौड़गयी। साहस भरा और भीतर जाकर बैठगया।

बूढा हरदयाल हाथमें माला लिये बैठा था। पासही एक नया मकान बनवारहा था। मकान धर्मादा और सूदके साथ-साथ उठरहा था। घीसा हरदयालका कर्जदार था। पहले महीने रुपया देरमे पाकर वह गरज उठा था—'क्यों बे, हमीसे साहसाह बनने चला है, साले? और वह दो आने?'

'मालिक,' घीसाने कहा—'वह भी आजायेंगे। यह तो जबानकी बात थी। यह भी घरवालीको रोती छोड़कर उसके कड़े रखके लाया हूँ। वह तो तुम मिले नही, जबानकी बात थी, वर्ना मैं तो कलही देदिये होता! क्या करूँ लालाजी, फेरी लगाते लगाते देही निचुडगयी, मगर आमन्दनी की वही मन्दी!'

'और सट्टा लगानेको कौन तेरा बाप तुझे पैसे देजावे है!'

'देखो लालाजी, सुनरहा हूँ देरसे। गालीगुता करोगे तो हाँ! कोई इज्जत थोडेही बेचदी है।'

'अबे, बडा साहूकार आया! खाली करदे मेरी कोठरी, समझा! खाली करदे। हाँ, क्या कही मैंने?'

घीसा लौटआया था। घर आतेही जो देखा कि रामस्वरूपका बुखार बढता ही जारहा है, हिम्मत पस्त होगयी। उल्टीके बाद भी हिचकियाँ बनी रही। वैद्यजीने जो काढे दिये वह दो दिन बाद हलकके नीचे उतारना हराम होगया। जाने कौनसी बीमारी थी, यही पता न लगा। उसी रात बहूको जाने क्यो गश आगया। और सुबह होते-न-होते वह चलबसी। शायद चार-पाँच दिनसे वह पेटवाली भूखी रहकर मेहनत करती परास्त होगयी और उसने मरघटमे ही जाकर चैन लिया। घीसाने देखा और वह रो न सका। जब वह लौटा तो बूढी महरिया बहूके कपडे इकट्ठे कररही थी। घीसाने करम ठोक लिये। अन्तमें उसकी फेरीपर आँच आयी। पैर टूटनेलगे। आँखोके सामने अन्धेरा छागया। बच्चा फिर कराह उठा।

उस मासके लौंदेमें अपूर्व शक्ति थी। उसने आँखोके सामने खुमारीका धुँधलका हावी कररखा था। बुढिया भीतर गयी। बहूकी खँगवारी उठा लायी। वह घीसाके हाथपर धरकर बोली—'जा लालाके पास जा, इसे धरके कुछ लेआ।'

घीसाने देखा। हाथपर साँप फन तिरछा किये कुण्डली मारे बैठा था। यही उसकी बहूके गलेसे लिपटा रहता था। वह रोदिया।

हरदयाल उस समय मन्दिरमें बैठे थे।

घीसाने झुककर कहा—'लालाजी, पालागन।'

लालाजीने आँख उठाकर देखा और फिर भजन करनेलगे। घीसाने खँगवारी आगे रखदी और गिडगिडाने लगा—'लालाजी अब कभी गुस्ताखी नहीं होगी।'

'क्या है? क्या है?' हरदयाल चिहुँक उठे।

'बहू गुजर गयी। बच्चा बीमार है।'

वह चुप होगया। हरदयालने नर्मीसे कहा—'अपना-अपना भाग्य है भइया! वह सबकुछ करते हैं। सामने शिवलिङ्ग था। उसपर कुछ चन्दन आदि चढा हुआ था। घीसाने देखा। कठोर सत्योंने कहा— यह कभी कुछ नहीं करते। किन्तु अज्ञात् भयने कहा—कुछ नहीं करते, तो बता हरदयाल आज कैसे इतना रुपयेवाला है?

घीसा बोला—'सब उन्हीकी माया है! उनकी दयासे दुनिया चलती है!'

हरदयाल माला जपनेलगा।

'लालाजी, गुजारिस है कि यह खँगवारी ......

'कितनेकी है?' भजन करते-करते लालाजीने पूछा।

'तेरह रुपया भर है।'

'तो क्या है ? कुछ नही। खैर तेरी मर्जी। मगर एक बात है। इधर मेरा हाथ बहुत तङ्ग है। सोचता हूँ क्या करूँ ?'

'महाराज निरास न करना। बच्चा तड़प - तडपकर मर जायेगा महाराज!'—उसका गला रुँधगया।

हरदयाल जैसे औरतोंकी अदाओंपर मरना भूलगया था वैसेही आँसूसे बहलजानेका लडकपन भी वह प्रारम्भमे नुकसान उठाकर छोड़-चुका था।

उसने कठोर स्वरसे कहा—'नखरे नही घीसू! चार आने सूदकी रही।'

'अजी लालाजी मरजाऊँगा। जानसे ही मरजाऊँगा। तुम्हारी कसम, बुरी मौत मरजाऊँगा। लालाजी तुम्हारे दरवाजेका जस है, जो आया वह खाली हाथ नही लौटा, फिर आज मेरेहीलिए लालाजी, दया करो ...'

'तब दो आने रुपया लूँगा। समझा ? अब इधरकी उधर नही होगी। क्या समझा ?'

अब उसीका मूल नही तो ब्याज तो चुकाना ही था। कलका दिन था सो निकल गया। तभी घीसा हरदयालको देखकर खिसकरहा था। उसने धर्मभावसे हाथ जोड़े—'हे परमात्मा! हे परमेसुर! मेरे बच्चेको अच्छा करदे!'

कीर्त्तन समाप्त होगया था। हरदयालने घीसाके कन्धेपर हाथ रख कर कहा—'परमात्माकी दया अपार है, उसकी महिमा अपरम्पार है।'

घीसाने भक्तिसे सिर झुकालिया। तभी हरदयालने पूछा—'कहो घीसा बच्चा कैसा है ?'

'लालाजी, उसकी बीमारीका ही पता नही लगता।'

'अच्छा होजायगा, चिन्ताकी कोई बात नही। वह सब अच्छा करते

हैं। उनकी दयासे जीवमात्र चलते हैं। पूर्व जन्मके पाप ही दुनियाको अँधेरेमे डालेहुए हैं। हाँ, अब कबतक देदोगे ?'

'अभी तो नही लालाजी, जरा हाथ खुले तो ,'

'अरे' हरदयालने टोककर कहा—'हाथ तो धीरे-धीरे खुलता रहेगा। मगर मैं भी तग हूँ इधर। भैया यो तो काम चलेगा नही। अपना मकान बनरहा है न ? आजाइयो उधरही मजूरी मिलेगी, कोई बेगार नही है, समझे! काम भी होजायगा और चुकाना-फुकाना तो हो ही जायगा।'

घीसाने सुना। पुजारी बाबाने शङ्खमें श्वास भरा। स्वर गूँजउठा लहराता, भरमाता

मन्दिरकी अँधेरी छायामे निस्तब्धता मँडराने लगी। चारों ओर हाय हाय करता सन्नाटा छागया। उस विशाल अनेक मजिलोवाले घरमे लोग चुपचाप सोगये। किसी तरह वे सब जिये जारहे थे। उनमेसे किसी का भी भविष्य निश्चित नही था। आस्मानकी सल्तनत बनरही थी। मनुष्य ने जैसे पृथ्वीसे मोह छोडदिया था!

यह भी ईश्वरकी दया थी।

—४—

तीसरी यातना: परम्परा

दिन थकाहुआ सा निकला। बगीचीके पेड सूने सूने से खडे थे। बादल अभी-अभी बरसकर बन्दहुए थे। अब वे आस्मानमे इधर-से-उधर भागरहे थे। उनकी सूनी उसासोंसे अतस कुछ-कुछ विह्वल होआता था।

चूरा मरगया था। उसका शव कपडेसे ढँका रखा था। केवल मुँह खुलाहुआ था। आँखे निकली पडरही थीं और गालोंपर डरावनी स्याही छायी हुई थी।

हरगोविन्दने बाँसोंको बाँधा और अर्थी सजानेलगा। महरी रोती रही। बाडेकी अन्य स्त्रियाँ आँसू बहातीहुई उसे सान्त्वना देनेलगी। किन्तु उसके आँसू बहे जारहे थे। वह गा-गाकर रोरही थी। हरदयालने दूरसे सुना और कोठरी बन्द करके पड़रहा।

चूरा मरगया था। जिन्दगी जबतक रही उसने अपनी बहूको खूब मारा। पर उसमे एक बहुत बडी बात थी। किसी दूसरेकी चुगली सुनकर उसने महरीसे कभीभी कुछ नही कहा।

लेकिन जब उसका हाथ उठता था, मजाल थी कि कोई रोक जाय। तब एकबार जब वह जवान थी चूरा अपने दमेकी कशिशमे खाँसरहा था।

थोड़ी देर बाद भीड़ इकट्ठी होगयी। महरी गाली देरही थी—'हाय कढी खाये, तेरे कीडा पड़े '

जवानीको जवानीने लोहेकी तरह खींचा। चूराका हाथ उठगया था।

गफूराने कहा—'क्यो बे, क्यों माररहा है साले ?'

बालिश्त-भरके चूराने कहा—'कतरनीसे कपडे काट जाकर, बीचमे मत बोलियो, खून होजायगा खून।

'अबे होशकी दवा कर, मुर्गा बनाकर छोड़ूँगा। औरतपर हाथ उठाता है : शरम नही आती ?'

'शरम आये तेरे माँ-बापको, समझा ? जीभ काटलूँगा जीभ !'

गफूरा बिगड़गया। होगये होते दो दो हाथ। महरी बेबस बकरी-सी उसकी तरफ देखरही थी और मनमे संशय लिये आनेवाले तूफानको सहनेका साहस भररही थी। चूराका हाथ बहनेको उठा। गफूराको लोगोंने पकड लिया। 'हाँ हाँ क्या करते हो ?'—भीड़ गरजउठी। गालियाँ चलरही थीं। शमसू कहरहा था—'हिजड़ा है साला !' गफूरने बहुतकुछ वजनी गालियाँ दी और कहा—'औरत कोई तेरी कुतिया है क्या ?' मगर चूरा समझानेवालों

के कोलाहलको भेदकर चिल्ला उठा—'औरत मेरी है कि तेरी ? अबे मैं इसे फेरे पाडकर लाया था कि तू ? मेरी चीज, फिर तू कौन लाटसाहबका बच्चा है कि बीचमे बोलेगा। मैं मारूँगा, खोदके गाडदूँगा। टुकडे-टुकड़े करके कछुओंको खिला दूँगा। तू कौन बीचमे बोलनेवाला आया ?'

एक बुजुर्ग आगे बढकर गफूरासे कहने लगे—'उसकी जोरू, उसकी मलामत। कलको फिर दोनो एक होंगे, तू किधरका रहेगा तब ? खुदाने जब अकल दी थी तब ये लोग गैरहाजिर थे। तू क्यो बिगड़ रिया है ? तू बीचमें मीजान बैठानेवाला कौन है ?'

सब चलेगये। चूराका हाथ चलनेलगा।

'हरामजादी, यहाँ यारोको लिये मौज कररही है, वहाँ ईंट ढोते-ढोते मरगये !'

बाडेमे यही प्रसिद्ध था कि असलमें चूरा अपनी बहूको दिलमें बहुत चाहता है। भाई मरद ही का तो हाथ है : जाने कब उठजाये !

चूरा जबतक जिया महरीको चैन नही मिला। उसका सुहाग था कि वह घरोमे जाकर चौका-बासन करती और कमा-कमाकर लाती। चूरा दमेमे पड़ा पडा बर्राया करता और उन दिनों गिरस्ती उसीपर आ झूलती। इकलौता पन्ना एक नम्बर ढीठ था। वह बापकी भी नही सुनता था। उम्र करीब उन्नीस सालकी। आजतक कसम है कि कभी एक पैसा कमाया हो। दिनभर डोलना, आवारागर्दी करना। बापकी नजर बचायी, माँसे माल ले-उडा। फिरतो यह देखो, वह देखो।

परसों बुखारमें बर्राते-बर्राते चूराने कहा—'देखरी जरा उस्तरा तो ले आ।'

महरीने शङ्कित होकर पूछा—'क्यो ?'

किन्तु चूरा शान्त था। फिरभी स्वभावसे बोला—'देखरी लाती है कि मैं उठूँ ?'

महरी चुपचाप उस्तरा लेआयी। चूरा उसे सिल्लीपर तेज करनेलगा।

'क्या करोगे ?' महरीने पूछा।

चूराने देखा। वह गयी-गुजरी बात-सी एक औरत : अब कहाँ है वह जोर? पलक झुकगयीं। बोला—'डाढमे फोड़ा उठा है, काटूँगा।'

महरी चुप होगयी। उस गन्दे उस्तरेने घाव करके उसपर जहरका काम किया। चूरा बर्रानेको पडगया। दिन आया और अपने निष्ठुर प्रकाश मे उसके मुखको पीलापन देगया। सन्ध्या अपने जानेके साथ उसके चेहरे का सारा खून लेगयी और रातने अपनी काली छाया उसपर निःशङ्क होकर अङ्कित करदी। रातभर चिल्लाकर आज सुबह चूरा उजालेके पहलेही चल बसा। वह मरा और ससारके नियमके अनुसार फूँक दियागया। जैसे जीर्ण चादर हटाकर हड्डियोंको तपा दियागया। महरी रोपडी। दो बूँद नीचे गिरी और वह गाउठी—'हाय मेरे राजा · ··· !' बात आयी गयी समाप्त होगयी।

× × ×

पन्ना देरसे उठता, देरसे नहाता, देरसे खाता और जोभी वह करता देरसे ही करता। महरीके बारहमासी कठोर परिश्रमने स्त्रीत्वमे पुरुषार्थ बन कर प्रकृतिपर भी विजय प्राप्त करली थी। पन्ना रातको ग्यारह-बारह बजे लौटता और अपनी जरूरतोंका बखान करता और तब फिर वही, फिर वही ··

पन्ना धीरे धीरे जुआ खेलनेलगा। कुछभी हो उसे जुआ खेलने से काम। औरत और शराबकी तरह जुआ भी एक नशा है।

रात होगयी। आज महरीका शरीर टूटरहा था। कल्लू हलवाईने पोस्ट मास्टरके लड़केकी शादीमे ठेका लिया था। वह वहींसे पूरी बेलकर आयी थी।

इसी समय पन्नाने प्रवेश किया। कमीज फटीहुई, सिरके बाल बिखरे हुए। एक धमाचौकडीसे वह घुसा और बोला—'अम्माँ दस रुपये देदे।'

महरीने कराहकर करवट बदली।

पन्ना अधीर-सा फिर बोला—'देती है कि नही?'

महरी कुछ नहीं समझी। लडकेकी इस बदतमीजीपर उसे क्रोध हो आया। वह उठ खडीहुई और चिल्लाकर बोली—'देदूँ, सो तेरा बाप ही तो कमा-कमाके जमा करगया है, हरामी। यहाँ हाड़ोंसे पत्थर तोडदिये और लल्लाकी पहुँची लचकगयी।'

पन्नाने सामने रखे मटकेमें जोरसे ठोकर मारी। मटका तडककर टूटगया। सारी दाल बाहर फैलगयी। महरी उसे चिल्लाकर गालियाँ देने लगी और रोनेलगी। पन्नाने कहा—'देख देदे। चुपचाप देदे नहीं तो कुट्टी करके धरदूँगा।'

'अरे देखलिये! कुट्टी करैगा तू?' महरीने दाल बीनतेहुए कहा—'कमीन नहीं तो कहींका। आया बडा लाटका ...'

इसके बाद उसने कुछ अश्लील गालियाँ दीं। पन्ना फिर चिल्लाया—'देख मानजा। नहीं हड्डी तोड़दूँगा हड्डी मारते-मारते ...'

महरीपर बिजलीकी चोटहुई। वह तडपकर उसके सामने जाखडी हुई और बकनेलगी—'उठा तू हाथ उठा। आज तू मार! अपनी माँको मार! सपूत बेटा! अरे तेरे मुँहपै आग बराय दूँ। कढीखाये ...'

पन्नाका हाथ चलगया। परम्परा चल निकली।

बूढ़े गफूराने सुना और कहा—'जैसा बाप वैसा बेटा... '

अब वह बूढा था। उसमे बीच-बचाव करनेका जोर नही रहा था।

रामधनने सुना। हुक्केपरसे मुँह हटालिया और फिर ठठाके हँसा बोला—'वाह जिजमान, इस घरमे रोज दिवाली मनरही है। हम तो पहले ही कहते थे ····'

महरी अपमान और विक्षोभसे तडप-तडपकर रोरही थी। पन्ना उससे छीनकर सारे रुपये लेगया था। कोठरीमे मटके टूटगये थे। दालमे आटा मिलगया था। उठी और बुखारमे बुरबुरातेहुए, रोतेहुए समेटने लगी। आज उसका हृदय टूक-टूक होरहा था। एकबार उस आदमीकी याद आयी जिसपर उसका दारोमदार था। कैसाभी था अपना आदमी था। उसका तो हक्क था। वह होता तो क्या यह कलका लौडा यों हाथ उठा जाता। ककड़ीकी तरह तोडदेता कलाई ···

गरीबीकी दुनिया पूँजीके अवैतनिक रूपमे पलरही थी!

—५—

चौथी यातना : चक्कर फिर चक्कर

लच्छोका आदमी चलबसा। पहले तो वह रोयी, लेकिन बादको उसके जीवनका सहारा उसका आठवाँ लडका जो किसी तरह जीरहा था उसपर ममता बनकर केन्द्रित होगया। लच्छो काली थी। यौवन ढलचुका था। बूढी चाची समझती थी कि वह सारी गिरस्ती पालरही है, लच्छोका दावा था कि उसके बूतेपर चूल्हा जलरहा है। चाचीके लड़के हालाँकि लच्छोके रामचन्दसे बड़े थे फिरभी वह रामचन्दको कभी किसीसे कम नहीं समझती थी। रातके तीन बजेही उठकर हल्दी या गेहूँ या चना पीसने बैठ जाती। कोठरीमे उसकी चक्कीका शोर उसके गीतोंसे मिलकर बाहर तक मँडरा उठता। जब वह बाहर निकलती बालोपर, तनपर पीसनका रङ्ग

ढाहोता। उसे फटकारती और एक लोटा पानी ले, मुँह हाथ पाँव धोकर, हगा फरिया पहनती, सिरपर कनस्तर धरती और बाजारके पन्सारीके यहाँ ाकर उसे देकर, पैसे लेआकर, घर आबैठती। दालानमे ही देवरानी सुरसुनी ठी रहती। लच्छोके पहुँचतेही उठकर जाती और दो मोटी-मोटी मिस्सी टियाँ फटकारती हुई लाती और पानीका गिलास सामने रखकर रोटियाँ सके हाथपर रखदेती।

सूखा रोगसे पीडित बालक लिये सुरसुती बैठकर अपने पतिकी निन्दा रने लगती। पतली तीखी आवाजमे उनको दुहराती, कभी बालकको चकारती, कभी अपने रामचन्दको डाँटता, रोटी खातीहुई लच्छो सुरसुती ो आधी बात सुनती आधी टाल देती।

सुरसुती कहने लगी—'जीजी, मै तो कुछभी नही समझी। कल तो ो आने लाकर दिये थे। मैंने पूछा था कि दिनभरकी पल्लेदारीमे बस दो ो आने मिले तो बोले हाँ!'

लच्छोने चौककर कहा—'पतला-दुबला है तो क्या? है तो मर्द-ानुस! दो आने तो हमारा रामचन्द ही कमालेगा।'

इतना कहकर उसने गर्वसे रामचन्दकी ओर देखा जो इस समय ोका पहाड़ा याद करनेमे अपनी जानकी पूरी ताक़त लगाये हुए था।

सुरसुतीने कहा—'जीजी, वे तो समझानेसे मानते नही। बेटा ुआ तबसे तो घरकी सुध ही छोडदी। और न जाने कहाँ-कहाँ चिन्ता याप गयी है राँड कि बस बोलते ही नहीं। मैंने जो कुछ कहा कि मारने-ारनेको तैयार!'

इसी समय नलपरसे पानी लाकर चाची आ खड़ी हुई। सुरसुतीने ुतरवाया।

अन्तिम बात सुनकर उन्होंने कहा—'तू तो बेटी रानी है रानी!

नैक मरदने छूदिया कि इज्जत चलीगयी।'

सुरसुती सकपका गयी। किन्तु लच्छोने कहा--'चाची, तुम समझो तो हो नहीं। कलको बेटेका ब्याह करेगा। खिला-पिलाकर आदमी बनायेगा ... '

चाचीने हाथ मटकाकर कहा--'बेटा न बेटाकी पूँछ। मेरेहीसे आग लेगयी नाम धरा बैसानर! तुमने भली गधाके कानमें फूँक मारी! हाय राम!'

लच्छोने बिगड़कर कहा--'मैं जो उसकी माँ होती तो एक दिनमे बेटाको छटीकी याद दिला देती। समझीं! तुम्हारेही लाड हैं कि ऊधम को लाड है, बरबादीको दुलार है।'

चाचीने ताली पीटकर कहा--'अरे मेरी छल्लो! तूहीने न उसे इत्ता बडा किया है अपनी छातोके बल पै? बेटी मन्दोदरी! जब उसका बाप मरा था तब तू कहाँ थी? उस बखत तो मैं थी। मैंने पाला है उसे दूध पिलाकर अपना। एक वो आयी है न कि फूलोपर चलूँगी मैं तो। काम नहीं किया जाता मेरी सौत?' सुरसुतीने आँखोमे आँसू भरके कहा--'खाजाओ मेरी सौगन्ध जीजी! मैंने कुछभी कहा है? देखो मुझे दोस लगारही हैं?'

लच्छोने तीव्र स्वरमे कहा--'देखली भैना! देखली, जैसे पाला है वैसेही वह करम कररहा है। इननेही बिगाडा है उसे। मैंतो चटनी करके धरदेती चटनी!'

चाचीने गरम होकर कहा--'तूही न एक खैरखा है उसकी? हम तो दुसमन हैं दुसमन। आयी बड़ी .... '

और चाचीने उसे कुछ गालियाँ दी। इसके बाद चाची और लच्छोमे स्त्री और पुरुषके गुह्याङ्गोके विशद विवेचन करनेवाले शास्त्रार्थ होनेलगे। सुरसुती चुपचाप घूँघट माथेपर सरकाये बैठीरही। इसी समय

सुरसुतीके पति सुरजनने प्रवेश किया। आज उसका सिर घुटाहुआ, आँखें चढ़ी हुई और कदम लडखडारहे थे। उसने कुछ भी नहीं कहा। एक खटियापर घुटने मोडकर वह पडगया। चाचीको आवताव कुछभी नहीं सूझा। वह उसके पास जाकर चिल्लाकर उसे एक-एक बात सुनानेलगी।

एकाएक सुरसुती चिल्लाउठी।।सुरजनकी देही काँपरही थी। हाथ-पाँव थरथरारहे थे। आँखे मुँदरही थीं। लच्छो उठी। उसने पास जाकर देखा।

देखते-देखते वाडेके लोगोंकी भीड इकट्ठी होगयी। शमसूने कहा—'जाओ किसी हकीम-अकीमको बुलाकर लाओ। यहाँ खड़ी खडी क्या कर रई हो ?'

लच्छोने सकपकाकर पूछा—'वह कित्ते रुपये लेगा ?'

शमसूने कहा—'येही दो तीन और क्या ? इस बखत जानकी बात है। जान है तो जहान है।'

लच्छोने चाचीकी ओर देखा। चाचीने सुरसुतीकी ओर। सुरसुती घूँघट काढे बैठी थी। चाचीने कहा—'सुरसुती लाज तो तेरी तब है जब ये जीता है। अब ला निकालके भीतर से।'

सुरसुतीने घूँघटमेंसे कहा—'चाची, मेरे पास क्या है जो दूँ ?'

चाचीने तडपकर कहा—'और चूल्हा अलग करानेको जीभ बहुत बडी है न ? लेलेके जो भररखी है उसे उगलदे महारानी ! नहीं तो यह ही नहीं रहा तो '

'छिः छिः'—बूढे रामधनने कहा—'असुभ बात मत कियाकर तू बिदिया।'

चाचीने पलटकर कहा—'तो मामा मेरे भी दो हैं। ये जमा करे और मैं उन्हे भूखा मारदूँ सो मेरे देखते न होगा।'

'तो हैं किसके पास ?' सुरसुतीने घूँघटमेंसे कहा, और वह जोर जोरसे रोनेलगी। हरगोविन्दने कहा—'क्या देखरही है लच्छो! बुला किसी स्यानेको। आनन-फानन ठीक करदे।'

बात पसन्द आयी। तुरन्त भोपा बुलायागया। उसने आकर पहले तो कुछ मन्तर पढ़े फिर लगा उसे झकझोरने। सुरजनके दाँत थोडी देर तक तो बजतेरहे फिर वह मूर्छित होकर भूमिपर फैलगया। भोपा बडी देर तक चिल्लाता रहा—'साले तेरी खोपड़ी तोड़दूँ। और बजरगबलीकी जय। भूतपलीतकी ऐसी तैसी, पास आये तो आग लगायदूँ, हेई बजरगबलीका साँचा

भीड छँटगयी। भोपा अपनी दक्षिणा लेकर उठखडा हुआ। जाँघो से ऊँचा लाल घुटन्ना, लाल फितूरी, माथेमे सिन्दूर लगाये जब वह चला तब कमरमे बँधे बड़े बडे घुँघरू गोले जैसे बजनेलगे।

सुरजन मूर्छित-सा पडारहा। रामचन्द बैठारहा। चाचीके लड़के भी आगये। साँझका चूल्हा जला, सुबहका चूल्हा जला, मगर सुरजन वैसेही साँस खींचता पड़ारहा। कभी-कभी वह जब किचकिचाने लगता लच्छो उसके मुँहमे पानी डालदेती। सुरसुती बच्चेको गोदीमे लिटाये, उसका रोना बन्द करनेको बारी बारीसे अदल-बदलकर अपने स्तन उसके मुँहमे देती, घूँघट काढ़े, पखा झलतीरही।

दोपहर ढले उस उदासीका गतिरोध टूटगया। सुरजनने आँख खोलदीं। उसने पानी माँगा। सुरसुती दौडकर लेआयी। पानी पिया।

लच्छोने पूछा—'अब कैसा है तेरा जी ?'

सुरजनने टूटे-फूटे शब्दोंमे कहा—'बाबाने दम लगवायी थी जड़ी रखकर, तभी मन खटागया।'

लच्छोने कहा—'तो क्या तू साधू होने गया था जो मूँड मुँड़ादिया ? यह किसके नामको रोती ?'

सुरजनने कोई जवाब नहीं दिया। पागलोंकी तरह देखता भर रहा, जैसे कुछभी नहीं समझा। लच्छोने बिगड़कर कहा—'मैं तो कहूँ मानजा, मानजा, और तू है कि सिरपै ही चढ़ाजावे! मैं कहूँ सीधे मुँह नातकर, सीधे मुँह, समझी?'

सुरजनने इधर-उधर देखा और निराश-सा दोनों हाथोंमें सिर थाम कर बैठगया। सुरसुती फिर हवा करनेलगी। लच्छोने पखा छीनकर फेंक दिया। वह जोरसे बोली—'क्या कही? अबतो नहीं जायगा बाबा आबा के पास?'

सुरजनने फिर सिर उठाकर देखा और हताशकी भाँति सिर हिला-दिया।

वह बहरा होगया था।

—६—

पाँचवीं यातना : विषैला धुँआ

कुछ दिनसे किसी कामसे पुलिसकी छावनीने कुछ दूरपर पड़ाव डालरखा था। उससे बाड़ेमें एक दहशत सी बैठगयी थी। लोगोंने आपस मे ही खूब चर्चा भी की, लेकिन नतीजा नहीं निकालसके। एक दिन छावनी मे हजामत बनानेवाला नाई आया था तो वह भी रौब डालगया था। कुछ पुरबिया किसान आकर बाड़ेमें रहनेलगे थे। पहले वह पुलिसमें थे, फिर निकाल दियेगये थे। तबसे पाँच मील दूर एक कारखाने जाते थे और अँधेरे में लौटकर आते। चूल्हा चढ़ाते और चौका काढ़ते। दिनमें मुँहमें अँगूठा डालकर पानी और हरीमिर्चके सहारे ढेरका ढेर सत्तू पेटमें उतार देते।

हरदयालका नया मकान उठनेलगा था। अनेक मजूर वहाँ काम करते और हरदयाल बैठा गिद्धकी तरह सब देखता रहता। ईंटपर ईंट रखने

का मतलब उसे खूनकी बूँदे देनेके समान था। घीमा वहीं काम करने आता। हरदयालका पठानी कर्ज धीरे-धीरे चुकता जारहा था या वास्तव मे द्रौपदीके चीरकी तरह बढता जारहा था। जबसे सुरजन बहरा हुआ वह वही काम करता। सुरसुती बच्चा गोदमे लिए बैठी-बैठी गिट्टी फोड़ा करती। सुधीर देखता और देखता। उसकी नजर जहाँ जाकर अटकगयी वह स्थल एक स्त्रीका शरीर था, जवानीसे गदराता। ऊँचा भारी लहँगा, ओढनी और नाक-कानसे लेकर शरीरके प्रत्येक अङ्गपर कोई-न-कोई सस्ता गहना। लगभग अट्ठारह उन्नीस सालकी डकमारती जवानी। जो आता उससे दिल्लगी करता, जो आता छेडता और वह सबकी बात सुनकर हँसती, स्वय चुहल करती और किसीके आँख मारनेपर लजाजानेका अभिनय करती। कठोर हृदय हरदयाल उसे जब मिलता तब डाँटता और वह उस बूढेकी तरफ एक अजीब तरहसे देखती कि बूढे हरदयालमे भी एक हल्की कँपकँपी-सी हो आती और क्षणभरको वह भी सीना निकालकर बैठता। अन्य मजदूरिने उसे देखकर जलती, गालियाँ देती, लेकिन जैसे उसे इन स्त्रियोंसे कोई दिलचस्पी नही थी। जब देखती तब पुरुषोंकी ओर देखती। बिडला विडला की बदनाम जातकी वह स्त्री अकालके कारण मारवाड छोडकर आगयी थी। सुधीर देखता। उसे ऐसा लगता जैसे प्राचीन कालमे कोडोंके जोरपर गुलामोंसे काम कराया जाता था।

शाम होगयी। पुरबिया किसान लौटकर खाने-पीनेलगे। हरदयाल आज कुछ विचलित होउठा था। उस बुढ़ापेमे भी उसका हृदय कुछ-कुछ-सा करनेलगा था। वह बैठकर भजन करनेलगा। जब इससे भी उसका मन नहीं माना तब वह मन्दिरमे चलागया।

पुरबिया किसान खा-पीकर आरामसे लेटरहे। वे देहके ताकतवर थे। कभी उन्होंने किसीके हाथका छुआ नही खाया। एकबार उन्होंने लच्छोकी ओर ललचाई आँखोंसे देखा भी था, किन्तु लच्छोकी निर्भय आँखो

को देखकर उनकी दृष्टि पथरागयी और भूमिसे टकराकर चूर-चूर होगयी। तबसे उन्होंने उसकी ओर कभीभी नही देखा।

रातका अँधियारा सनसनाने लगा। इसी समय रामसिंहने सुना उधर पेडोके पीछे कुछ न होनेवाली बात होरही है। उसने चुपचाप हरीसिंहको जगादिया। दोनो चुपचाप छिपकर देखनेलगे।

हरदयाल खडा था। उसकी बगलमे मारवाडिन थी।

हरदयाल कहरहा था—'देख मानजा. मालामाल करदूँगा।'

मारवाडिनने कहा—'मरदका क्या? ऐसे कहके मुकरनेवाले बहुत देखे हैं।'

हरदयालने उसकी ओर व्यगसे देखकर कहा— जमाना तो अठन्नी का गुन गारहा है!'

स्त्रीने निस्सकोच होकर कहा—'बौहरे, अपनी-अपनी सरधा है। तुम्हारे क्या कमी है! भगमान्ने तुम्हे क्या नहीं दिया?'

हरदयालने विवश होकर जाल फेका—'हटा एक रुपया लेले।'

'वाह बौहरे?' मारवाडिनने कहा—'अपने बुढापेको भी देखा है? बन्दरकी सी तो सूरत होगयी है।' हाथ नचाकर बोली—'एक रुपया लेले! घरकी बात समझ रखी है? जाओ-जाओ पॉच रुपये लूँगी। वे तो अपने जैसे हैं, तुम तो बौहरे हो, समझी! एक बात कैसे होजायगी?'

रामसिंहको हँसी आगयी। इससे पहले कि हरीसिंह उसे रोके राम-सिंह चिल्लाउठा—'शाबास, बौहरे! खूब हाथ मारा है! बुढापेमे पीपल लचकरहा है?'

हरदयाल चौकउठा। उसने एकबार इधर - उधर देखा और फिर अपनी कोठरीकी ओर चलपडा। मारवाडिन फिर अपने तम्बूमे सोने चली गयी। हरीसिंह और रामसिंह लौट आये। रातभर इसीकी चर्चा रही।

प्रायः पूरे बाडेको बात सुनादीगयी। जवान औरतें खूब हँसी। लोगोंको मारवाडिनके प्रति एक श्रद्धा-सी होगयी। औरत कट्टर हैं—करती है तो मन की करती है! कोई फुसलाके जबरन कुछ नहीं करासकता। सुधीरने भी सुना। और मास्टर साहबको जाकर सुनाया। दोनों खूब हँसे। हरदयाल जब अपनी जगह जाकर बैठा उसने देखा मजदूर आज कुछ कानाफूसी कररहे थे। आज उन लोगोंके चेहरेपर एक कुटिल मुस्कराहट थी। दो एक जवान छोकरोंने पीछेसे आवाज भी कसी, किन्तु हरदयालने उनसे कुछभी नहीं कहा।

दोपहरको जब वे लोग एक किनारे बैठकर रोटी खानेलगे, जब कुछ लोग बहरे सुरजनको छेड़रहे थे, मारवाडिनने रोतेहुए प्रवेश किया। सब चौंकउठे। घीसाने पूछा—'क्योंरी, क्या हुआ?'

मारवाड़िन चुप खडीरही। मजूर मजूरिनोंने उसे चारों तरफसे घेर लिया।

हरदयालने उसे निकालदिया था और उसकी आधी मजूरी दाबली थी। हरगोविन्दने कहा—'तो क्या करेगी तू? मैं भी एक प्रोफेसरका नौकर था। उसकी बीबीने मुझसे कहा—मेरे पैरोंमें मालिस करदे, मेरी साडी धोदे, मैंने इन्कार करदिया। तो उसने मेरी तनखा दाबके मुझे निकालदिया। मैंने कहासुनी करके उसपै कचहरीमें दावा किया। मगर क्या नतीजा निकला। ऐसा इन्साफ हुआ कि मैं तो सुनके दंग रहगया। जजने कहा कि हरगोविन्द पेशेका नौकर है। उसके साथी कमीन हैं। प्रोफेसर इज्जतका आदमी है। वह बारह रुपयेकेलिए झूठ नहीं बोलसकता। मुकद्दमा खारिज। क्या कही? मुकद्दमा खारिज। सो लल्ली, जो आठ रुपये खरच हुए सो अलग, बीसकी बैठी। पूरी रकम थी।'

घीसाने कहा—'और कोई थोड़ी नहीं सो भी, जमा समझो पूरी!'

'क्या करलिया?' हरगोविन्दने आँख निकालकर पूछा—'क्या कर लिया? कुछ नहीं। प्रोफेसर अबभी फलफूल रहा है। हम हैं कि मेहनत

करते हैं, तुम्हारे बाल-बच्चा या होरहे हैं यों' उसने उँगली दिखाकर दुब-लेपनकी ओर इशारा किया और कहतागया—'मगर वे साले पान-पान-सौ रुपये तनखा पानेवाले गेहूँकी खारहे हैं और तुम बेटा चनेकी भसको चनेकी!'

घीसाने कहा—'तो क्या करेगी?'

मारवाडिन यह सुनकर हँसदी। बोली—'कहीं चली जाऊँगी' और क्या! पेटको नहीं होगा तो यहीं क्या करूँगी? देस छोड़ा तो पेटकी खातिर ही न? और सबतो राग-झमेला सग बैठे सोयेका है। मुक्ख तो पेट है लाला। जहाँ जाऊँगी मजूरी करके खाऊँगी।'

सब उदास-से तितर बितर होगये। मजूरिने उसके स्वाभिमान और स्वतन्त्र साहसको देखकर दग रहगयी। मजूर उदास होगये कि वह उनके बीचमे एक रौनक थी जिसके चले जानेपर बातचीतका एक केन्द्र ही खोजा-यगा। मारवाड़िन वहाँसे चलीगयी।

दूसरे दिन अचरजसे लोगोने देखा कि रामसिंह और हरीसिंहकी कोठरीमे मारवाडिन सोरही थी। रात भी वह शायद वहीं रही थी। फिरसे चर्चा चलपडी। अबके बड़ी निंदा हुई। मगर वह बोली—'लाज उसकी जिसकी लाजको ढाँकने तनपर बस्तर हो।'

लच्छोको अपने पातिव्रतपर विशेष गर्व था। जब वह महरीसे मिली, दोनोंने उसे कुलटा और हरजायी-कुलच्छनी करार दिया। चलते-चलते महरीने कहा—'भैना, धरम नही रहा, नही तो मरद किसका नहीं होता? मगर मरद तो एक, और ऐसा जैसा अपना चोला, कि मौतसे पहले न छोड़ा जाय'

उसकी बातकी कद्र थी। उसने चूराके साथ जिस तरह निभायी थी उसे देख लोग उसे सती मानते थे। कुछ दिनसे पन्ना भी इधर-उधर न जाकर मारवाड़िनकी कोठरीके ही चक्कर लगाता फिरता।

शामको जब पुरबिया लौटते, चौका काढते, चूल्हा सुलगाते, खुद खाते फिर बाकी बचा चौकेके बाहर बिठाकर मारवाडिनको खिलाते। सुबह उनके चलेजानेपर जब वह अकेली रहजाती, कोई उससे बात नहीं करता तो वह पन्नासे ही दिल्लगी किया करती। बाडेके लोग देखते। महरीने सुना। उस दिन शामको घमासान हुआ, किन्तु हरीसिंहने डॉटकर कहा—'खबरदार जो चीचपाट की है, मुँह तोडदूँगा, मुँह। लौडा तो तेरा बदमास है, परायी बहू-बेटीके पीछे डालैगा तो उसका भला क्या कसूर है ?'

सुननेवाले हँसपडे। जाने क्यों महरी भी चुप होगयी। रामसिंहने पन्नाकी गर्दन पकडकर कहा—'बेटा, जब मुँहका दूध सूखजाय तब इधर आइए। समझा ? समझा कि नहीं बोल, नहीं तो अभी लाश पटकके मारूँगा बोल ! पन्नाने सुना और फौरनही जब पन्ना समझगया उसने उसे छोड दिया। फिर वही कार्य्यक्रम चलनेलगा। धीरे - धीरे मारवाडिनसे स्त्रियाँ मिलने जुलने लगी। बिन्दिया चाचीने कहा—'तो क्या हुआ ? धोखा ही सही, वेसा तो नहीं है ! जात-पॉत तो तबतक है जबतक देस है, जब मॉ बापने ही छोडदिया तो वह क्या करे ?'

बात फैलगयी, जमगयी, और बीचके गड्ढेपर पत्थरकी पटियाकी तरह पडगयी। आवागमन सरल होगया। पुरबियोंका धरम चलता रहा। लोगोंमे रामसिंह उसका पति प्रसिद्ध था, किन्तु वास्तवमे वह द्रौपदीकी भॉति जीवन बिताये जारही थी। भेद इतना ही था कि पुराने ऋषि-मुनि तरह देगये थे, आजकल मास्टर साहबको यह बिल्कुल असह्य था। बडी दिलचस्पीसे पूरा किस्सा सुनते और अन्तमे कहते—'हटाओ यार, तुम भी क्या गन्दी बाते लेबैठे ?'

सुधीर हमेशा मारवाड़िनकी तरफ बोलता। मास्टर साहब विरुद्ध मोर्चा डाटते। एक दिन हरगोविन्द और घीसाके सामने ऐसीही बाते होतीं रही। शाम तक मशहूर होगया कि ऊपरका बाबू मारवाड़िन पै फिदा होगया

है। सुधीरने सुना। पहले तो हँसा और फिर निष्प्रभ-सा कुछ सोचनेलगा। मारवाडिनने जब सुना तो कोई ध्यान नही दिया। पूछनेपर कहा—'ओ तो बाबू है, उसका क्या?' जैसे बाबू होनेके कारण वह कोई पराया था और उसके दायरेके बिल्कुल बाहर था।

धीरे-धीरे कुछ महीने बीतगये। सुबह-शाम पुलिसके पडावके सामने सिपाहियोंकी कवायद होती। कभी-कभी जमादारोंकी गन्दी गालियाँ गूँज उठती और फिरसे जीवन चलनेलगता।

लेकिन एकदिन फिर बाडेमे हलचल मचउठी। हरदयाल बाहर खडा चिल्लारहा था। मारवाडिन भीतर पडी कराहरही थी। उसकी आँखों में आँसू छारहे थे। आज उसकी सारी अकड खतम होचुकी थी। सुधीर ने देखा। नीचे उतर आया। पूछनेपर हरदयालने कहा—'भागगये वे दोनो बदमाश, इस कुतियाको छोड़गये हैं।'

सुधीरने सुना और चुपचाप लौटआया। एक बार जीमे आया जाकर मारवाडिनसे पूछे तो क्या हुआ?

घीसाने कहा—'बाबू भैया, कौन सुख नहीं चाहता! इसी दिनके लिए पुरखोंने धरम बनाये हैं। अब क्या करेगी? मरदको क्या, ठोका-पीटा छोडगया! लेकिन यह तो औरत है, किसका नाम होगा? उनका क्या? वे तो बदमास थे: जोखों आयी भाग निकले कि अब बोझा कौन सम्भाले, इसे तो लादी उठानी होगी।'

मारवाड़िनके दोनोंमेसे किसी एकका गर्भ रहगया था। आज वह शर्म से बाहर निकल नही सकी। हरदयाल कुछ देर तक तो देखतारहा। फिर चिल्ला कर बोला—'निकलजा यहाँसे छिनाल, अब रोरही है? तब न सूझा था हरामिन, कुतिया?'

घीसाकी माँने बढ़कर कहा—'लाला, दया करो, गाभिन है! कहाँ

जायगी! दो दिनकी बात है, माफ करदो। पेट उतर जायगा तो तुम्हारी ही चाकरी करेगी'।

हरदयाल चलागया। बूढी अपनी कोठरीको लौटगयी। सब चले गये। केवल मारवाड़िन पडी-पड़ी रोतीरही। आज उसमे इतना भी साहस न था कि बाहर चलीजाय। बाडेमे हरदयालकी दरियादिलीकी इन्तहा तारीफे होरही थी। ऐसा दिल है तभी तो परमात्माने इतना दिया है, नहीं तो किसके पास है ऐसी माया?

मारवाड़िन जब निकली तब पेटमे ऐंठा चलरहा था और चेहरेपर पीलापन हुमकरहा था। वह माँ बननेवाली थी—एक और कीडा पैदा होनेवाला था!

—७—

छठी यातना : पशु

सामनेके मैदानमे शोर होनेलगा। सूरज डूबरहा था। और एक कोलाहल जो मानों दूर क्षितिजके पार कलरव करती लहरोंका मृदु-मृदु कम्पन हो, या बडे दिनकी गिरजेकी घटियोंकी तुमुल ऊर्मिल प्रतिध्वनि हो, और इसी बीच कभी-कभी कोई गीत जैसे तारा टिमटिमा उठा हो। सुधीरने ऐसे देखा जैसे वह तूफानमे फँसी एक छोटी-सी नाव थी जिसके पतवार खोगये थे किन्तु बही जारही थी। कञ्जर डेरे गाडरहे थे। उनके पास विश्वासों की कैसीभी पराजय नही थी। वे खाते थे, पीते थे, सोते थे, और उनकी सत्ता और एक पशुकी सत्तामे कोई भेद नही था। उनकी जवान स्त्रियाँ मदमाती डोलती, बच्चे नगे घूमते और पुरुषोंके चेहरेकी कठोरता देखकर लोग उन्हे बदमाश कहते। कोई कोई उनमेसे तमाशे दिखाता। एक गाना गाता, साथकी जवान लडकी नाचती, और ऐसा अश्लील अङ्ग-चालन करती कि बरबस लोगोंको बादमे निन्दा करनेकेलिए रुककर उसे देखना पड़ता।

वे लोग अपना दिन अधिकाशमें घूमतेहुए निकाल देते । इतनी जोरसे बात करते कि देखनेवाला समझता लडाई होरही है और लडते तो किचकिचाकर झपटते, नाखूनोंसे खोंचते या काटखाते । कभी कभी उनके हाथोंमे छुरियॉ चमक उठती । तब दूसरे मर्द कञ्जर आकर छुरी छीनलेते और फिर अलग जा बैठते । फिर लडाई होने लगती । बहुधा रोटी या औरत के पीछे लडाई होती । शामको ईंटोंके बने बरायनाम चूल्हासे धूँआ उठने लगता और रातको चिथडोंके तम्बुओंमें वे सब जानवरोंकी तरह घुसजाते और खॉसते - खखारते चिमट - चिमटाकर सोरहते । वासनाओंका नग्नसे नग्न रूप उनकेलिए एक स्वाभाविक बात थी । एक तरफ तम्बूमे मॉ-बाप सोते रहते, दूसरी तरफ बेटा और बहू ।

मोतीने कुछ दिनसे कमालको छोडकर रामभू करलिया था । इस पर एक दिन खून खच्चर होते-होते बचा दिनमे छोटे-छोटे लडके लड़की ही नहीं बडी - बडी जवान लडकियॉ राहके किनारे डोलती रहती । कोई निकला नही कि पीछे होली । उनका घिघियाना, भीख मॉगना, इतना गदा था कि लज्जित होकर राहगीरको उन्हे कुछ-न-कुछ देना ही पडता ।

एक दिन एक बाबू अपनी पत्नीको लिये जारहा था । सडकपर काफी भीड थी । मोती उस बाबूके पीछे लगगयी । वह रिरियानेलगी—बाबू, तेरी जूती चाटूँ ! ऐ बाबू, तेरी बहूके गोरे गालोंपै काले तिलकी कसम ! तेरा घर फूले फले ! तेरे बच्चे बडे हों

गोरे गालोंपै काले तिलका वर्णन सुनकर राहगीर मुड-मुडकर देखने लगे । बाबूको लाचार होकर पैसा देनापड़ा ।

दूसरे दिन ही पासमे किसी रईसके घर चोरी होगयी । दारोगाजीने फौरन कञ्जरोंके चारो तरफ घेरा डालदिया । उन्होने देखा कञ्जरियॉ बडी कटीली थीं । उनका जी आगया । कानून था कि ऐसे लोगोंको सदेहपर भी गिरफ़ार किया जासकता है क्योंकि यह होते ही चोर हैं । इनपर मुक़दमा

चलानेकी भी कोई आवश्यकता नही होती। न्याय उनकी ओर था। जितने भी जवान कञ्जर थे वे सब गिरफ्तार करलिये गये। औरते देखती रही, बच्चे सहमगये। रोयाधोया कोई नही। उन्हे यह सब देखनेकी आदत थी। उनके पुरुष अक्सर गिरफ्तार करलिये जाते थे। जबतक वे छूटकर न आते, तम्बू गडे रहते। उनके आनेपर तुरन्त वह स्थान छोड़दिया जाता।

सुधीर अपने कमरेसे यह सब चुपचाप देखा करता। बाडेमे सब उनसे नफरत करते थे। पुलिस चलीगयी। थोड़ी देरतक मैदानमे एक दमघोट सन्नाटा छायारहा किन्तु उसके बाद फिर वही हलचल होनेलगी।

मोतीने पुकारकर कहा—'ओरी सुहैल, सुनती है ? अनतो कोई मरद नही रहा।'

सुहैलने ठहाका मारकर कहा—'बुढ्ढे तो हैं ही।' मोती भी हँसपडी। बूढ़ी कामनी भी आगयी। कामनीने कहा—'ओहो, दो दिन मरद नही रहा तो परान सूखगये! बेटी, अब तो यह लड़के कुछ नही करते। हमारे मरद तो दिन दहाडे लूटलेते थे।'

मोतीने आँखे मिचकाकर कहा—'तूभी तो तब जवान थी।'

काकी हँसदी।

दो-तीन दिन बाद ही बूढ़े सुबहके गये बहुत रातहुए लौटते। वे चोरी करनेमे असमर्थ थे क्योंकि उनमे अब फुर्ती नही बची थी। अब जो कमायी होती वह अलग अलग न रखी जाकर सामाजिक संपत्ति होती। किन्तु फिरभी पूरा न पडता।

मोतीने सुहैलको बुलाकर कहा—'इस देसके मरद कैसे हैं? किसी मे दम ही नही लगता!'

सुहैलने कहा—'उधर सिपाही रहते हैं। मुझे बुलाते थे। दूरसे रुपया दिखाया था। मैं डरके मारे न गयी।'

मोतीने कहा—'हत्तेरीकी ! सच ! रुपया दिखाया था ?'

सुहैलने कहा—'मगर दे ही देगा इसकी क्या पक्की है। वह तो पूरी छावनी है। मारेंगे तो ?'

'ओहो' मोतीने कहा—'मारेंगे ऐसेही ? चल, सभाको चलेगी ?'

सुहैलने सहर्ष स्वीकार करलिया। धीरे धीरे सिपाही इधरही आने लगे। अब फिर मस्ती छानेलगी। दिन रात मैदानमे नाच-गाने हुआ करते। रातमे अब बूढे भी शायद जान-जानकर काफी देरसे लौटते। अब वे पैसे बचाकर नही लाते। जो पाते हैं, वही शराब पीते हैं और जब लौटते हैं तो बूढ़े-बुढियोंमे दगा होता है। जवान लडकियाँ देख-देखकर हँसते-हँसते लोटपोट होजाती हैं।

बूढ़ी स्यामा कानी होगयी थी। उसका आदमी देखनेमे बिल्कुल भयानक पशु-सा लगता था। जब दोनो मत्त होकर नाचने लगते बच्चोंका टोल हर्षित होकर ताली बजाने लगता।

शाम होगयी। मोती और सुहैल राहके किनारे बैठी बाते कररही थीं। अब थोडी ही देरमें सिपाही आने लगजायेंगे। सारी-की-सारी कजरियाँ तम्बुओंमे तैयार होरही थी। उनकी तैयारी कोई प्रसाधन नहीं था। मनकी चाह-मात्र थी। उसी समय सुधीर उधरसे निकला। मोतीने लपककर उसका हाथ पकडलिया। सुहैलने पलभरको देखा और फिर दौडकर दूसरा हाथ पकड़लिया।

सुधीर बोला—'क्या है, क्या है ?' उसको परेशान देखकर उनकी हिम्मत औरभी बढगयी। मोतीने कहा—'बाबू ! एक अठन्नी देजा ! ऐ बाबू तेरा पैर धोऊँ ! ऐ बाबू तेरा · · '

सुधीर भीख माँगनेके इस नये तरीकेपर स्तब्ध रहगया। उसने जेब में हाथ डाला। केवल एक इकन्नी थी। उसने दोनोकी ओर देखा। दोनों

मेसे यौवनकी गध आरही थी। देखनेसे ही लगता था कि यह स्त्रियाँ केवल इसीलिए हैं कि इनसे कोई ऐसीही वासनात्मक बात कीजाय। न जाने कितने युगोंके सकोचने उसके हृदयको जकडलिया। उसने अपनेको छुडातेहुए इकन्नी फेंकदी। सुहैलने झुककर उठाली। किन्तु मोतीने कहा—'ऐ बाबू मुझे! मुझे भी कुछ देजा!'

सुधीरने कहा—'एकको देदी। अब मुझे तुझे क्या?'

मोती एकबार ठुमका मारकर हँसदी। उसने अपनी आँख मिचका दी। कोई देख न ले इस सकोचसे सुधीर पानी-पानी होकर लाजमें गड-गया। सुहैल ठहाका मारकर हँसदी।

सुधीरने कमरेपर आकर जब उस तरफ झाँका, उसने देखा उसकी इकन्नी झुककर उठनेवाली स्त्री अपने भारी लहँगेको नीचेसे दो जगह पकडे उसे फैलायेहुए खडी थी। लहँगा नीचेसे चाँदकी तरह गोल फैलगया था और पर्दा बनानेका प्रयत्न कररहा था। किन्तु फिरभी अपर्याप्त था। पीछेकी झाड़ीके पीछे दो स्त्रीके पैर थे और दो बड़े-बडे : सिपाहियोंके बूट पहने।

सुधीरने देखा और घृणा और अपमानसे विक्षुब्ध होकर भीतर लौट गया। वे वास्तवमें बिल्कुल पशु थे। उसका हृदय इसे देखकर उद्विग्न-सा एकबार भीतर-ही-भीतर हाहाकार करउठा। कुछही दूर पीछे कुछ लड़कियाँ नाचरही थीं। उनका गीत आस्मानमें भँवर मारता काँपरहा था। किन्तु नारीका यह मोल देखकर उसको अन्तरात्मामें शूल-सा चुभनेलगा। जिनके न लज्जा थी, न सकोच, न पवित्रता, न अन्य ही कोई भाव—वे पशु नहीं तो क्या हैं? किन्तु न जाने कहाँसे सुधीरके मनमें एक करुणा जागउठी। उसने कहा—वे पशु हैं क्योंकि वे अशिक्षित हैं, दरिद्र हैं, और ससार उनकी मजबूरियोंको लूटता रहा है। और सुधीर उदास होगया।

८

दिनमें ही घने बादल छागये। लच्छोने देखकर बाहर धूपमें फैले गेहूँ उठाकर भीतर टाट बिछालिया और बैठकर बीननेलगी। रामचन्दको बुखार था। वह चुपचाप खोर ओढकर पड़ा था। मारवाड़िन दर्दसे कराह रही थी। घीसाकी माँ उसके पास बैठी थी।

मास्टर साहब बादलोंको देख-देखकर मगन होरहे थे। सुधीर चुपचाप बैठा था।

दोपहर ढले नन्हीं-नन्ही फुहारें आनेलगी। पेड़ पत्ते जमीन आस्मान सब धीरे-धीरे भीगनेलगे। दूर कञ्जर गीत गारहे थे। उनके बूढ़े उठ-उठकर तम्बुओंमे चलेगये। युवतियोंका गीत प्रबल और चुभीला बनकर आस्मान में गूँजरहा था।

चिड़ियाँ चहचहाती हुई घोंसलोंको लौटचली। हवा सनसनाने लगी। हरदयाल एक बनेहुए कमरेमें बैठा काम देखरहा था। मजदूर कामपरसे हटनेलगे। उसने गरजकर कहा—'किये जाओ काम। खबरदार जो हाथ हटाया है। मुफतकी मजूरी नहीं मिलेगी। ऐसी क्या कोई बाढ आगयी है ?'

घीसा फिर काम करनेलगा। हरगोविन्द तथा अन्य सबभी फिर काममे लगगये, किन्तु पानीका वेग बढतागया। मुँहपर बौछार पड़नेलगी। तमाम बदन भीगगया। तब वे लोग भागकर अपनी-अपनी कोठरियोंमे आगये। हरदयाल छतरी लगाये अपनी कोठरीमें जाघुसा। पानी बरसता रहा। उस भयानक वर्षामे आसपासके घर गिरनेलगे।

थोडी देरको पानी रुकगया। किन्तु फिर जब वह बरसनेलगा तो एकधार। रात बीतगयी, दूसरा दिन भी बीतगया। तीसरे दिन सब लोगोंके दिल बैठनेलगे। घरोंमे खानेका सामान खत्म होगया था। बाहर जानेकी कोई राह न थी। पानी बरसरहा था, एकधार।

आज उन दलितोंको अपनी-अपनी चीजोंसे मोह होरहा था। वर्षा का पानी धीरे-धीरे बढता देखकर उनका हृदय स्तब्ध होरहा था। बिंदिया अपने दोनो बच्चोका मुँह देख-देखकर कॉप उठती थी। महरीने पन्नाको खीचकर अपने पास करलिया और रोतेहुए बोलउठी— 'पन्ना बेटा, अब क्या होगा ?' किन्तु उसने कुछ नही कहा।

सुधीर तीन दिनसे दफ्तर नहीं जासका था। मास्टर बार - बार कहता था—'सुधीर बाबू, हेडमास्टर तो कहेगा हमे कुछ नहीं मालूम। नही आना था तो इत्तला क्यों न दी ?'

सुधीर सुनता और चुप होरहता। नीचेकी मजिल-भरमें शायद दो एक चूल्हे जलसके थे। सारे कडे और लकड़ियॉ गीली होगयी थीं। बाहर मैदानके तम्बू हवासे तितर - बितर होकर उडगये थे। कञ्जर उन्हे खीच-खीचकर फिर घर बनानेका प्रयत्न करते थे किन्तु आँधीमे उनका सब कुछ उडा जारहा था।

चारो तरफ पानी भरगया था। पानीकी भयकर बाढ अट्टहास करती हुई सिरपर गरजरही थी। बच्चे रोरहे थे, औरते सिसकरही थी। जिस समय नरकके प्राणी आकाशकी शरणमे जारहे थे उस समय भगवान अप्सराओं को गोदमे लिये आसव पीरहा था और उसके न्यायदडको लेकर लक्ष्मी नगी नाचरही थी। इसके बाद ऊपरकी मंजिलसे धीमा - सा सगीत पानीके गर्जनमे हिलारे भरउठा। सुधीर लुटा-सा, गमगीन - सा देखतारहा। उस का हृदय खोया-सा, सकपकाया-सा बिल्कुल चुप था। जब नीचेकी मजिल मे पानी भरनेलगा, दौड़ - दौड़कर नीचेसे लोग ऊपर जानेलगे। जगलमें आग लगगयी थी। शेरनी और बकरी साथ-साथ आखड़े हुए थे। औरते अपनी छाती खोलकर बच्चोंके मुँहसे लगालगा देती थीं, किन्तु बच्चे दूध पीते हैं, खून नहीं। मुहर्रमके धर्मान्ध मुसलमान जैसे हा-हा करके छाती पीटते हैं उससे भी भयानक स्वर मचरहा था। तमाम काम बन्द था। जीवन

की सत्ता बनाये रखनेवाले निर्जीव दकियानूसी प्राणी आज उदास और पराजित-से बैठे थे।

आस्मानमें बादल भीषण गर्जन कररहे थे, ऐसा गर्जन कि नवोढ़ा जिसे सुनकर थर्रा उठती है।

इतनेमे ऊपरकी मजिलसे एक जबर्दस्त ठहाका लगा। न जाने वह किस रईसका अभिमान था कि नाचनेवालीकी पायल बजती ही चलीगयी। उस ठहाकेकी प्रतिध्वनि आसपास सबकहीं गूँजउठी। सुधीरने सुना, जैसे रोम जलरहा था और नीरो अपने फिडिलपर लगातार अपनी उँगलियोको चला-चलाकर अट्टहास कररहा था। जैसे चगेज लाखोके सिर काटकर तलवारों की झनझनाहटमें उन्मादसे हँसरहा हो। पानीकी भीषण ठोकरो और बादलों की गरजने उस ठहाकेको वीभत्स बनादिया। बादलोंके रुई-से बदनपर बिजलियोके कोडे पडरहे थे और वह भयकर स्वरसे आर्त्तनाद करउठते थे।

सुधीरने देखा, जिन्दगीका घर डूबरहा था किन्तु वे सर्वहारा अब भी नही मरे थे। उसने देखा कञ्जरोकी बस्ती बहगयी थी और वे सब इधर ही भागे आरहे थे। आज उनके पास कुछभी नहीं था। कलतक जो टूटे फूटे तम्बू थे वहभी अब नहीं रहे। अनेक दिनोके भूखे वे कञ्जर कुत्तोंके झुण्डकी तरह इधर ही भागे आरहे थे। उनकी इस भगदडने सबको शकित करदिया। लोगोंने दौड़-दौड़कर उनके पथमें बाधा उपस्थित करनेको दरवाजे लगादिये।

कञ्जर और कञ्जरियाँ कुछ देर पानीमें इधर-उधर भागते रहे। जब उन्हे कोई जगह नही मिली वे ऊपर चढनेको भागे। भीषण वर्षामे कई फिसलगये और गिरकर कराहनेलगे, किन्तु फिरभी उन लोगोंकेलिए किसीने भी द्वार नही खोला। वे वहीं पानीमें भीगतेहुए खड़ेरहे। उनके छोटे-छोटे बच्चे पेडोंके नीचे तनोंको पकडे खडे थे। हवासे उनके दाँत बज-

बज उठते थे। पानी घुटने-घुटने बहरहा था। औरतोंके कपडे भीगकर उनके शरीरसे चिपकगये थे। वे प्रायः नंगी सी प्रतीत होरही थीं। बूढोंको कुछभी सूझ नहीं पडता था। वे पानीमें खडे केवल चिल्लारहे थे। आकाशमें कभी-कभी बिजली कडक उठती थी जिसको सुनकर कञ्जरियाँ आर्त्त स्वरसे चिल्ला उठती थीं और बच्चोंकी तरफ दौडती किन्तु ठोकर खा खा कर गिरजाती थीं।

और तबही अचानक कोठरीमें हरदयाल अपने रुपये गिननेलगा। सुधीरने सुना रुपयेका महानाद खन-खन करके गूँजउठा। यह रुपया नहीं था, गरीबोंकी हड्डियाँ कड़कडा रही थीं, यह रुपयेकी आवाज नहीं थी, यह पोम्पिआईकी सल्तनत लुढ़करही थी। यह खनखनकी मधुर तान नहीं थी, यह मौतके घण्टेका ढन-ढन शब्द तुमुल कोलाहल कररहा था। आदमीके जीवनका कोई मोल नहीं था। यह रुपया नहीं था, यह जीते जागते आदमीका कफन था। यह दौलत नहीं थी, यह खोखली पीठवाली उभरी छाती थी। यह माँ नहीं थी, यह भरे बाज़ार जोबन बेचनेवाली हरजाई थी।

किन्तु वे असहाय थे। उनके सामने इस भीषण समुद्रमें कोई ध्रुवतारा नहीं था। वे ऐसे भयभीत और बेजबान थे जैसे दुनियाके शुरूके वनमानव खोहों और पहाडोंमें विशालकाय मोटी खालवाले अजदहेको देखकर चट्टानोंमें दुबकते थे और वह उनकी तरफ हुंकार-गरजकर दुम फटकारता बढाआता था।

कञ्जरोंने सुना। एकाएक उनके सामने बिजली-सी कौंधउठी। पानी निरन्तर भरता जारहा था। बच्चे तो प्रायः डूबनेलगे थे। वे लोग एक साथ हरदयालकी कोठरीकी ओर टूटपडे। ऊपरसे बाडेके लोग देखतेरहे। ऊँची-ऊँची मंजिलवालोंने भी घबराकर इधरही देखना शुरू किया। किसीका भी साहस नहीं हुआ कि बाहर आए।

कञ्जरोंने बल करके दरवाजेको तोड़दिया और उन्होंने हरदयालका

रुपया ऐसे लूटलिया जैसे वारन हेस्टिंग्सने बेगमोंकी लुटीहुई इज्जतको लूटा था, जैसे करोडों भूखे हिन्दुस्तानियोंने अङ्गरेजोंके न्यायको लूटलियां है"।

लूटकर वे लोग भागचले। घायल हरदयाल पडा छटपटारहा था। बाहर तूफ़ान गरजरहा था। भीषण हवाकी प्रतिध्वनि होरही थी—सूँ · सॉं · ···

कुछ नहीं

२७ मौनीगली
कूचा लाला माधोलाल

प्रिय प्रकाश,

तुम्हारा पत्र आया। और यहभी समझलिया कि भाभीसे तुम्हारी बिल्कुल नहीं पटती। लेकिन यहभी समझमे नही आता कि विवाहका आखिर मतलब क्या है ? कहनेको तो तुम बहुत कुछ कहजाओगे और मैं बिना दिलचस्पी लिये भी सुनूँगा ही, लेकिन बात इतनेहीसे सुलझनेसे रही। विवाहकी कहानियाँ यदि कोई सुनाने बैठजाय तो भूतोंकी कहानियाँ भी इतनी अच्छी नही लगेंगी। कुँवारी लडकियोका लड़कोंसे प्रेम, प्रेमको ही सबकुछ समझनेका पागलपन या पति-पत्नीका सम्बन्ध, न जाने कितनी उल्टी-सीधी बाते हैं, और जो कही छिपा-चोरी किसीकी पत्नी या किसीके पतिका सम्बन्ध हो तो भला क्या कहने ? एक पूरा चिट्ठा ही समझो।

लेकिन हालमे एक घटना होगयी है। हिन्दू धर्म खतरेमे पडगया है। मेरी रायमे बेचारा हिन्दू धर्म तो क्या, दुनियाका कोई धर्म नही जो इस हरकतसे लडखड़ा न उठा हो। मेरी नजरमे बात एक मामूली सी है। फिर भी *तुम्हारे जीवनमे नया कोण उपस्थित होसके इसकी सम्भावनासे ही तुम्हे* लिखरहा हूँ। तुम जानते हो मैं लड़कियोको कोई अजीब चीज समझनेसे हमेशा ही इन्कार करतारहा हूँ।

परसों मैं शामको घूमने जारहा था। राहमे देखा एक औरत खड़ी रोरही थी देखनेमे वह किसी क्लर्ककी पत्नी लगती थी। और थी भी वह सच-मुचही वही जो मैंने सोचा था। मैं रुकगया। लोगोंसे पूछनेपर पता लगा

कि उसका पति उसे रोज मारता है और घरसे निकालना चाहता है। इस-लिए वह उसे पागल करार देना चाहता है। स्त्री कहती थी वह बदमाश है, झूठा है। सचमुच स्त्री उन्मादमें थी। शकलकी बुरी, रङ्गकी काली, और तुर्रा यह कि वह गर्भवती भी थी। सोच सकते हो कितनी भद्दी होगी? खैर, हम कुछ लोग मिलकर उसके पतिके पास गये। पति एक क्लर्क था। कुछ पढरहा था। हमने जाकर दरवाजा खटखटाया।

स्त्रीको देखकर मुझे यही विस्मय हुआ कि वह कितनी उन्मत्त थी। देखनेमे उसका कामातुर रूप वास्तवमे असन्तुष्ट-सा हाहाकार कररहा था। पुरुषका शरीर उसके मूल्यका मापदण्ड नहीं होता। नारीका अपना शरीर ही इस समाजमें उसका एकमात्र सहायक है। सौन्दर्य्य और वासनाका मेल ही यह ससार सहसकता है। वह स्त्री जो विवाहके बन्धनमे पतिको सबकुछ अर्पित करदेती है उसका आधार ठोस और भौतिक है। कल्पनाकी सुन्दरियों से प्रेम करनेवाले अपने नैतिक व्यभिचारको छिपानेकेलिए ही संसारको माया कहते हैं। स्त्रीकी वह अतृप्ति ही कदाचित् उसके नारीत्वका एक सत्य था जिसे वह खोलनेमे झेपतीहुई अपने पतिके यहाँ दासीत्वका अपना अधि-कार माँगरही थी। हमारा समाज उसे वह भी नहीं देसकता क्योंकि उसके पास कुछभी नहीं है। वह स्वय कगाल है किन्तु उसे अपनी दुर्गन्धपर ही भीषण अभिमान है।

सामने खड़खड़ हुई। उसके पतिने दरवाजा खोलकर हम लोगोंको बिठालिया और अगरेजीमें बातचीत करनेलगा। औरत इसपर क्रोधसे पागल होकर ऊलजलूल बकनेलगी कि मैं तेरा ख़ून पीजाऊँगी। मैं तुझे जानसे मारडालूँगी। तू कमा-कमाके रंडियोंका पेट भरता है तभी मुझे निकालना चाहता है। मैं तेरा भण्डा फोड़दूँगी। आदि-आदि। पतिने सुना और मुस्कराकर मुझसे अङ्गरेजीमे कहा—'आपने सुना? क्या यह औरत आपको पागल नहीं लगती?'

'तुम बताओ प्रकाश, मैं क्या जबाब देता ? न मैं पतिको जानता था न पत्नीको। पति की तरफसे बोलता तो सब कहते मर्द कुछ करे कोई कुछ नही कहता, और स्त्रीकी तरफसे उठता तो पच्चीस उँगलियाँ उठती कि औरत मिली और झट उसके साथ होलिये। जैसे उसका पति तो कुछ है ही नहीं!

उस रात स्त्रीने अपने आपको उसकी दयापर पलनेवाली भिखारिणी कहनेमे जो सकोच किया उसे देखकर मुझे विश्वास होगया है कि नारी भी नरकी भाँतिही अपना स्वाभिमान रखसकती है। युगान्तरसे जो उसे पुरुषकी छाया बनादिया गया है उससे वह अपना अस्तित्व, अपनी मर्यादा भूलगयी है। यह तो जीवनका कोई कार्यवान् रूप नही कि दोनोंका एक दूसरेकी उपेक्षा करना ही उनकी सत्ताकी पूरी परख है। मैं जानता हूँ यह सघर्ष केवल इसीलिए है कि विश्वासोका अहाता ऐसी गलत जगहोंसे बाँधागया है जिसने तारतम्य और सामजस्यको जगह-जगह अनुचित रूपसे काट दिया है। किन्तु जिसके पास लागत नही है वह कभी नया घर नही बना सकता। परन्तु इतिहासने कभी पाँवको रोका नही।

लड-झगड़कर अन्तमे स्त्रीने एक कोठरी बन्द करके भीतरसे ताला लगालिया क्योंकि उसे भय था कही सबके चलेजानेपर वह उसे फिर मारे नहीं। भीतरसे वह गालियाँ देतीरही और पतिने मुस्कारकर कहा—'आपकी सेवाओंकेलिए धन्यवाद! मैं तो उसे निकालता नही। जब उसे छिर्द उठती है तब भागजाती है, आपने अच्छा किया कि मेरी पत्नी फिर मुझे सौपदी।'

मुझे उसकी आकृतिपर एक कुटिल रेखा सरकती दिखायी दी। मैं लौटआया। उस रातभर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धका घोर विवेचन जीवनमें इतनी तन्मयतासे मैंने पहली बार किया।

दूसरे दिन घर लौटते समय एक अजीव बात फिर देखी। तुम्हे याद होगा अमरनाथ एक अधेड़ आदमी है। सब उसका मजाक उड़ाते

थे कि अभीतक उसका ब्याह ही नही होसका था। योरॅपमे क्वॉरा रहना एक गर्वकी बात समझी जाती थी। हमारे देशमे स्त्रियॉ उसे आदमी नही समझतीं जिसके कोई पत्नी न हो। पुरुष जबतक स्त्रीको अपने अधिकार मे नही रखसकता, स्त्रियॉ उसपर हॅसती हैं। जगली पशुको जजीरोंसे बॉधकर ही पालतू बनाया जाता है। हमारे देशमें एक समझदार वर्ग भी हैं, जिस वर्गके सदस्य सिर झुकाकर, हारकर समझौता करनेको सदैव तत्पर रहते हैं। उन्होंने देखा है कि जिन आधारोंपर वे खडे हैं वह केवल अपनी सत्ता-मात्र रखना है। यदि उसमे परिवर्त्तन किया जासकता है तो वह चित्र ही मिटजाता है जिसका अभीतक वे रूप अपने मस्तिष्कमे चरम सत्यके रूपमे ग्रहण कियेहुए हैं। जबतक मनुष्य समाजको रिश्वत नही देता तबतक उसे भीखका अधिकार भी नही मिलता। अब ससार कहता है उसके क्या नही हुआ। पारसाल उसकी शादी होगयी। मुहल्लेमे एक लडकी थी करीब सोलह-सत्रह वर्षकी। एक उसके छोटा भाई था। मॉ-बाप मरचुके थे। चाचाने पाला था। चाची कर्कशा थी। बचपनसे ही लडकी भूखी रखीगयी। किसीने उसकी चिन्ता नहीं की। मुहल्लेके आवारे लडकाने उसे पहलेसे ही भॉप रखा था। इधर वह चौदहकी हुई नही कि यारोंने उसके सामने मिठाईके दोने सजादिये। आजतकको जितना सतियाकी कहानियॉ मिलती हैं उनमे वे स्त्रियॉ या तो राजघराने की थीं या पूज्य ब्राह्मणोंकी रिश्तेदार। कभी तुमने बचपनसे ही गरीब और अपमानित लडकीको भी सती होते सुना है? हुआ वही जो होना था। लड़कीका तो इस तरह पेट मजेसे भरने लगा। बात धीरे-धीरे मुहल्लेमे फैलगयी। चाचा झक मारते रहगये, कल तक भतीजीको भूखा मारनेमे जिनकी आत्माने तनिक भी कसक नही खायी आज उनकी मासकी नाक के मौजूद रहते भी इज्जतवाली नाक कटगयी। यह नाक तब नही कटी जब अफसरोंके सामने उन्होंने उसे रगडदिया। इसलिए कि यदि वह यही नहीं करते तो उनका पेट कैसे भरता! पेट है तो उन्हींका है। लड़कीको उसे

अपने कोई भी अधिकार वे नही दे सकते। देशकी स्वतन्त्रता बेच कर अपना ईमान बनाये रखना चाहते हैं। कहाँ है ऐसी पददलित नारकीय सत्ताका न्याय ? कहाँ है मनुष्यताका अपना सहेजा परम्पराका दुलार ? कुछ नही, केवल पराजय, झूठ, एक दूसरेको धोखा देनेकी छलना। गँदले पानीमे रहनेवाले मेढक क्या जाने कि पानीका स्वच्छ प्रवाह क्या है? आँख खुलेसे मुँदे तक जिनका जीवन एक वास्तविकताको दूर रखनेका पाखड है वे दीवाल तोडकर खिड़की क्या बनायेगे? और लड़की तन भी नही बेच सकती ? उनकी स्त्रीने और किया ही क्या है ? एक दासीमात्र ही तो है वह ! वही चाची भी शर्माकर चुप होगयी। लेकिन लडकीको तो ब्याहना था। क्या जाने किस दिन चाचा नवासेका मुँह देखते और जमाईका पता नही चलता। उन्ही दिनो अमरनाथ दिल्लीसे आगरे आया था। चार साल बाद जब वह लौटा तो चाचाने उससे दोस्तीकी। हमउम्र थे, कुछ देर भी नही लगी। घर लेगये लड़की दिखायी। वह बेचारा पसन्द-नापसन्द क्या करता? उसे तो क्वाँरपन मिटाना था। तैयार होगया। शादी होगयी। मुहल्लेके लोगोने उसे खूब भडकाया भी मगर वह यही समझता रहा कि मुझे क्वाँरा बनाये रखनेकेलिए बदमाशोंने गिरोह बाँधकर षडयन्त्र रचा है।

विवाहके समय वह पैंतालीस सालका था। बाल सफेद होनेलगे थे, बल्कि महाशय आगेसे गजे भी थे। शरीरकी गठन लटक गयी थी। बीवी सोलह-एककी जिसका यौवन इतना लुटकर भी अगणित रत्नोंसे भरे कोषके समान था। समय अपने हाथोंसे जिसे लूटरहा हो, उसे मनुष्य, यह निर्बल जन्तु, क्या छीन सकेगा ? पुरुष अपनेको स्वामी बनाकर भी जब अपनी प्राकृतिक वासनासे उसके सामने घिघियाता है तब उससे बढकर कौनसा प्राणी है जिसे तुम घृणित समझ सकनेका असम्भव काम कर सकते हो ?

आज वह सोलह वर्षकी लड़की अपनी जवानीका जवानीसे सतु-

लन नहीं करसकतीं। दानका पशु बँधा रहनेको है जैसे कोई गौ। जब मालिककी मर्जी हुई गाभिन कराली अन्यथा.कुछ नही का यह अभिशाप हमारे संस्कारोंका सबसे बडा मोल है। गर्म गर्म वासनाओंपर, ठडा पानी डालकर उससे कहागया है कि भाफ नही निकलनी चाहिए क्योंकि भाफ मे शक्ति होती है जो इस्पातको फाडकर बाहर निकल जाती है।

और लडकी चुपचाप सब मानकर अपने कर्मोंको पाप समझकर ग्लानिसे दबी जाती थी। मुहल्लेका हर लडका उसे देखकर किचकिचाता था और अब वह सबके सामने, आँखे झुकाती थी। उसका छोटा भाई फिरभी सडकपर मारा मारा घूमता था और किसीने दो पैसे दिये नहीं कि वह उसीका खत बहिनके हाथपर रखदेता। बहिन पीटती, वह रोदेता और फिर सडकपर भाग आता। छोटा-सा बच्चा है, सात आठ सालका।

मुहल्लेमे गज्जूका नाम आजसे नहीं सात सालसे मशहूर गुण्डोंमे लियाजाता है। उसने उस लडकीको कहीभी देखा नही कि बकना शुरू करदेता। अब भूलगयी है महारानी? कलतक तो हमने नही देखा तो खाँस-खाँसके बुलाया करती थी!

वह सुनती और सर झुकाये चली जाती। शादीके पहले उसको दो प्रेमियोंको लडा देनेमे खास मजा आता था। किसीभी धर्मके हिसाबसे वह पाप था। क्योंकि धर्मका आधार नारीकी शारीरिक पवित्रता है। यह पवित्रता वास्तवमें पुरुषका कुटुम्ब बनाये रखनेका मूलमन्त्र है। जब स्त्री उच्छृङ्खल होउठती है तब सारी शृङ्खलाएँ तडतडाकर चटकजाती हैं। किन्तु जहाज जब समुद्रमे अकेला चल निकलता है तब उसे पानीकी अधिक शक्ति सहनी पडती है। मैं उन लोगोको भी जानता हूँ जो कहते हैं कि नारीने आरामसे रहनेकेलिए पुरुषको इतने अधिकार दिये है। हिन्दुस्तानियोंने भी आरामसे रहनेकेलिए ब्रिटिश साम्राज्यवादपर इतना भार छोड़दिया है। सभ्यता सिखानेकी आड बनानेवाले यह अन्धकारके प्रेत

वास्तवमें एक दूसरेका गला घोंट सकते है, क्योंकि उसमें उनके स्वार्थ लिप्त रहते हैं। और कुछ नही। यह कुछ नहीं मुझे पागल बनारही है क्योंकि शून्यपर टकटकी लगाकर साधना करनेके व्यक्तिगत मोक्षसे मै घृणा करने लगा हूँ। धार्मिक रूप और नीतिसे सती बनी रहनेकेलिए उसे जीवित रहने का कोई साधन ही न था। मैं पूछता हूँ क्या जवानी बेचना पाप है या कुत्तेकी तरह निरीह खा पीकर मरजाना? तुम कहोगे रूखा सूखा खाकर और पवित्र रहना ही मनुष्यका सर्वोच्च आचरण है। लेकिन जो ऐसा उपदेश देते हैं वे न भूखकी व्यथा जानते हैं न यही समझते है कि सुख की जो अनुचित प्रेरणा होती है उसमे, उचित साधनोंसे प्राप्त आनन्दसे, कहीं अधिक बल और उत्तेजना होती है।

और कल वही गज्जो वही कही ताक लगाये बैठारहा होगा। लड़की घरमे अकेली थी। अमरनाथ कही गया था। जबर्दस्ती गज्जो उसके घर मे घुसगया और उसे दबाने लगा। पहले तो लडकी मना करतीरही, लेकिन बादको जब वह यह धमकी देनेलगा कि तमाम पुराना किस्सा खोलदेगा तो वह कॉपगयी। समझती थी कि अमरनाथको कुछभी नही मालूम। अब उसे शोक होता: क्यों न दुख सहकर भी उसने इस चादरको कोरा रखा? हिन्दू समाजमे बहुत-सी जवान विधवा नही होती? यदि अमरनाथ जान जायगा तब वह क्या करेगी? वह उसे घरसे लात मारकर निकाल देगा। और ससार कहेगा ठीक है। ठीक तो शायद वह स्वय कहेगी। परम्पराका मैल क्या शीघ्रही जासकता है?

आज यदि वह पवित्र बननेका प्रयत्न भी करे तो कोईभी उसे स्वीकार करनेको तैयार नही होगा। सारे पाप धुल सकते हैं, एक यही पाप नही धुल सकता? यद्यपि इसका पीछे कोई चिन्ह तक नही रहता। क्षण भरका वह शारीरिक आनन्द ही जिसकी चरम अभिव्यक्ति है वह आत्माका पाप कैसे होसकता है।

गज्जोने धमकी दी कि वह उसकी पहली पोलोंका काला चिट्ठा सब के सामने छपवाकर बँटवादेगा। वह झुकगयी। गज्जोके दोस्तोंको तो मालूम था ही। इस जलनसे कि गज्जो फिर गोता मारकर मोती निकाललाया उन्होंने बाहरसे कुण्डी चढादी। हालके हालमे मुहल्लेवाले बिरादरीवालोंकी भीड इकट्ठी होगयी।

परसोवाला क्लर्क भी आगया। आखिर दरवाजा खोलागया। गज्जो निकला। अब क्या था? घर-घर खबर बिजलीकी तरह फैलगयी। औरतों के झुडके-झुड आनेलगे। क्लर्कसाहबने आगे बढकर उस लडकीका अपराध सबके सामने खोलदिया। क्लर्कसाहबका चरित्र अच्छा समझा जाता था। इसी समय अमरनाथ भी लौटआया। उसने भी सुना और क्रोधसे पागल होउठा। तीरकी तरह भीतर घुसा, जैसे जानसे मार डालेगा। मगर भीतर घुसकर देखा तो चुप रहगया। लडकी निस्सहाय-सी बैठी थी। अमरनाथ ठिठक गया। उसने देखा जैसे वह लड़की बिजलीसे चोट खाकर स्तब्ध-सी सुन्न पड़गयी थी। एकबार उसने अपनी ओर देखा, एकबार उसकी ओर। मुहल्ला बाहर इकट्ठा होगया था, जैसे इससे बढकर स्त्रीकेलिए कोई पाप नही होसकता।

हमारा पाप-पुण्य परखनेका नैतिक ज्ञान इतना कलुषित और सकुचित होगया है कि एक स्त्री-पुरुषके मौन सम्बन्धपर ही धर्मकी दीवार खड़ीकरते हैं। अमरनाथको एक-एककर याद आया। महुल्लेकी चार भाभियाँ एकबार जब वह क्वाँरा था तब उसकी क्या न थी? और आज भी कोई गज्जोसे कुछ नही कहता! फिर इस लडकीने ही ऐसा क्या अपराध किया है। आखिर बचपनमे ऐसी भूल कौन नहीं करता?

उसने देखा वह फूट-फूटकर रोरही थी। उसने उससे कुछभी नही कहा। जाने क्यों उसका मन पसीज उठा। इतने दिनोंमे वह उस लड़की के बारेमे सबकुछ सुनचुका था। घृणाके स्थानपर उसे सदा उसपर करुणा ही आयी।

बाहर लोगोने तय किया कि अमरनाथको अगर बिरादरीमे रहना हो तो वह उस लडकी को घरसे निकालदे। अमरनाथ बाहर आया और उसको देखकर क्लर्कसाहबने घोषणाको दुहरादिया। मुन्नूकी बूढी बूआ है न, उसका कथन वेदवाक्यकी तरह स्त्रियोमे चलता है। उसने सीधे सीधे शब्दोंमे अमरनाथसे इन्ही शर्तोंको दुहरादिया। लेकिन अमरनाथने थोडी देरतक कुछभी उत्तर नहीं दिया। उसने सिर उठाकर देखा। लोगोके मुख पर घृणा, तिरस्कार, और विक्षोभके चिन्ह थे। वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इतनी बडी बात उसपर ऐसे फिसलगयी जैसे चिकने घडेपरसे पानी। आज उसपर अधिकारी होनेका दायित्व था। उसकी बुद्धिपर एक लडकी का जीवन था। क्या उसका मान एक स्त्रीके वेश्या होनेपर जीवित रह सकेगा? जब वह गर्मी और सूजाकमे तडप तडपकर जानदेगी उस समय किस मुख से वह स्वर्गकी सीढीपर चढ़ सकेगा? ससारकी कोई स्त्री उससे विवाह करने को तत्पर न थी। वह एक फँसगयी ही-सी जो उसपर आश्रित है उसे वह कुचलदे क्योंकि उसे इसका अधिकार मिलगया है?

सामने क्लर्क खडा था। अमरनाथ जानता था कि इस लम्पटके भीतर का विष ही ऊपर पुण्यके ये झाग बरसारहा है। इन घड़ोंके मुँह इतने सँकरे हैं कि भीतर हाथ देकर अच्छी तरह इन्हे माँजा भी नही जासकता। और वह खडारहा जैसे कुछ नहीं हुआ। उसने कहा—'जो होगया सो होगया। अब अपने अपने घर जाइए।'

'नहीं' बूआ गरजी, 'तुझे उस कुलटाको निकालना पडेगा। ऐसी भी लुगाईकी क्या गुलामी?'

किन्तु अमरनाथने कडककर कहा—'जाओ, जाओ, घर जाओ अपने, समझीं! जब तुमने मुझ बूढ़ेसे इसकी शादी करायी थी तब वह जायज था? और अब इस छोटी-सी गलतीपर इसे मैं निकालदूं तो इसका

क्या होगा ? दर-दर मारी मारी न फिरेगी ? जाओ, जाओ ! वह मेरी बहू है, किसीका क्या लेनदेन है ?'

इसपर सबने दाँतोसे जीभ काटली । मगर क्लर्कसाहब बोलउठे—'चलो ठीक है । तुम बूढे हो, तुम्हे तो रसोईदारिन चाहिए थी, सो मिल-गयी। बीबीकी सब इच्छाएँ पूरी करनेकेलिए तुमने व्याह ही कब किया था !'

पापकी यह पुकार एक षड्यन्त्र है। इसमे हमारा खोखलापन सारे आदर्शोंको ठोकर मारकर नङ्गा नाचने लगता है। आये कोई और अपनी प्रशस्तिके रक्तलिखित गीत सुनाये । आज मानवका सम्पूर्ण पतन होगया है। इस वेदीपर नरबलिके अतिरिक्त किसीकी भी प्रशसा नही कीजासकती।

अमरनाथने सुना और भीतर-ही-भीतर वह लज्जासे सिकुडगया। जिस पौरुषपर बच्चा पैदा-भर करनेको गर्व करके भारतीय डीग मारते हैं, उसका आजकल एकमात्र उपयोग समझते हैं, वहभी उससे छीन लियागया था। जिसके बलपर नारी मुँहखायी-सी भालूकी तरह उसके पीछे दौडती है, उस पर ही इस क्लर्कने घोर प्रहार किया था ।

सामने यह एक विचित्र व्यक्ति था जो पापको घरमे देखकर भी उसे पालकर बढारहा था जैसे उस लडकीने कुछ नहीं किया ।

जन समाज ठठाकर हँसपडा । लोग अपने-अपने घर जानेलगे । उनकी इच्छाएँ पूरी नही हुई । शामतक सबके मुँहपर यही बात रही । भगवान् राम तक यह नही करसके थे । भीष्म पितामह तकके पुरुषार्थको शिशुपालने नपुसकता कहा था ।

तुम क्या सोचते हो ? इस दाम्पत्य जीवनका प्रेम कहाँ है ? यदि प्रेम दया है अथवा बाँटतोल है तो वह न रहस्य है न कोई अद्भुत कल्पना। क्या अमरनाथ बनना कठिन है या क्लर्कसाहब ? मैं तो दोनोंको ही कोई बडी बात नही समझता। हमारे पास कुछ है ही नहीं जिससे हम मन बह-

मर्यादाएँ। अतः यही एक चक्कर है जिसमे निरन्तर दौडते रहते हैं, मगर बाहर नहीं निकलपाते और अपनी ही पगध्वनिसे डरकर बार-बार मूर्छित होजाते हैं।

लिखते-लिखते थकगया हूँ, फिर कभी लिखूँगा। भाभीसे नमस्ते कहना। मेरी राय है तुम पहले प्रेम न करके कैदियोंकी तरह ही सही, साथ-साथ रहने लायक समझौता करलो, वर्ना छोडछाड़ दोगे तो जानते ही हो क्या होगा! प्रेम तो एक लाचारीका मसविदा है। अब नही है तो कल होजायगा और कुछ नही है तो वही करना होगा। थोडे दिन बाद तुम्हारे अनुसार प्रेमकी नयी परिभाषाएँ बनजायँगी।

शेष सब कुशल है। एक बात अवश्य है। कैसाभी माननीय समझौता हो वह परोक्ष रूपमे होता पराजय ही है। उत्तर देना।

तुम्हारा ही
सोमनाथ

देवोत्थान

भोर हुई, जागरण हुआ। नन्दन वनमे सुरभित समीर अलमा-कर गूँजउठा। मादक परिमलकी हिलोरसे स्निग्ध प्रकाश झिलमिला रहा था। शतदल शय्यापर इन्द्राणी अगडाई भरउठी। सहसा उस युगोकी शान्तिको घरघराहटकी भीषण ध्वनिने तोडदिया। चौंककर मेनका उठ बैठी। इन्द्राणीने उसकी ओर देखा और भयभीत-सी दोनो इन्द्रके वक्षसे चिपकगयी।

'देव, वृत्र आरहा है।'

देवराज ठठाकर हँसपडे। बोले, 'देवी, यह वृत्र नही, बर्बर फासिस्टो के वायुयान द्यावाके वक्षस्थलको चीरकर गरजरहे हैं।'

'ओह', प्राणोको धैर्य्यने आश्वासन दिया। सिंहद्वारपर दुन्दुभी बजनेलगी। गन्धर्वोने वीणाके तारोपर उँगलियाँ फेरी। वही अजस्र-विलासका महानद उमडपडा।

इन्द्रने वज्रको उठातेहुए कहा—'देवी, एक दिन यह वज्र अभेद्य था, पर न जाने मानवने इससेभी अभेद्य अस्त्रोका आविष्कार कैसे कर लिया। यह त्यागका वरदान आज न जाने मुझे जीवनसे इतनी दूर कैसे खींचलाया ?'

दो काली छायाएँ आकर इन्द्रके चरणोपर लेटगयीं।

एक ने कहा—'देव, मैं अभीतक आपके शासनका प्रतिनिधित्व कररहा था।'

दूसरेने कहा—'देव, मैं आर्थिक रूपसे इसकी सहायता कररहा था।'

उर्वशी मुसकराई। उसने पूछा—'तुम कौन हो, इतने जर्जर ?'

एकने कहा—'मैं अन्धविश्वास हूँ। अपनी - अपनी कमरमे डोर बाँधकर दूसरा छोर मानव-विश्वमे बाँधकर यहाँ तक उडकर आये हैं।'

दूसरे ने कहा—'देव, मैं साम्राज्यवाद हूँ। जर्जर विक्षत होगया हूँ। अब रहा नही जाता। मेरी रक्षा करिए। मेरे अन्तके साथ आपका भी तो नाश है।'

इन्द्राणी बोलउठी—'किन्तु तुमने हमारे नामपर शोषण और अत्याचार क्यो किया ?'

साम्राज्यवाद पुकार उठा—'देव, यह मानव तो अब पुरानी लीको को बिल्कुल छोडदेना चाहता है। महाराजाधिराज, इन अनीश्वरवादी राक्षसोंको समाप्त क्यो नही करदिया जाता ?'

वरुणने दौडकर यमसे कहा—'चलिए वहाँ कुछ लोगोंको दण्ड दीजिए।'

यमने कहा—'मगर यह तो कलियुग है! मेरी शक्ति तो क्षीण हो गयी है। क्या करूँ, गुस्सा तो बहुत आता है। रुद्रसे कहो न कि वे ध्वस करें ?'

देवताओंने समवेत-स्वरसे आवाहन किया—'हे मृत्युञ्जय, नृत्य करो।'

महारुद्रने चरण उठाया, किन्तु युद्धकी भीषणतासे काँपती पृथ्वीपर उनका चरण काँपगया। पार्वती दौडकर उनके गलेसे लगगयी। बोलीं—'रहने दो। तुम्ही एक भोलेभाले मिलजाते हो सबको। यह क्या, पाँव लहूलुहान होगया ?'

रक्तसे पाँव लाल था।

यमने कहा—'यह तो मृत्युलोकमे मानवका बहाहुआ रक्त है।'

सरस्वती बोली—'ओह, मेरी वीणाका नाद कोई नही सुनता!'

स्वर्गमें कोलाहल मचउठा। त्राहि माम् त्राहि माम्के स्वरसे इन्द्र भी विक्षुब्ध होगये।

उनके मुखसे सहसा निकलगया—'यह क्या ?'

'देव !' चीत्कार हुआ। स्वर्ग पृथ्वीसे दूर होचला है।

अन्धविश्वास और साम्राज्यवाद क्रोध और भयसे काँपनेलगे।

वे बोले—'महाराजाधिराज, कोई इस डोरीके मानव-विश्वमें बँधे छोरको काटरहा है।'

'लौट जाओ ! लौट जाओ !!' इन्द्राणी चिल्लायीं।

इन्द्रने कहा—'चलो मैं पहुँचा आता हूँ।' वरुण और सूर्य्य भी साथ चले। इन्द्रने एक जर्मन वायुयानमें बैठनेकेलिए बुलाया, किन्तु उसी समय रूसके ऐन्टी-एयरक्रफ्ट गनके वारसे वह हवाई जहाज गिरकर जलने लगा। वरुण काँपउठे। बोले— 'बाल-बाल बचे ! अरे इन्द्र, कहाँ आ गये ? कमबख्त लडते हैं, लडने दो ! कौन अपना नुकसान होरहा है ? पूजाके समय खाने आजायेंगे ! चलो।'

इन्द्रने कहा—'नहीं सूर्य्य, तपो, तपो ! कि यह अनीश्वरवादी भस्म होजायें। सूर्य्य लाचारीके स्वरमें बोलउठे—'क्या बताऊँ ? आप कहेंगे कि पौरुष नहीं रहा। मगर सृष्टिका नियम ही ऐसा है कि मैं दिनपर दिन ठंडा हुआ जारहा हूँ और उधर रूसकी बर्फपर मेरा कुछ असर भी नहीं होता।'

'यह कौन मन्त्रोच्चारण कररहे हैं ?' इन्द्र ने पूछा।

साम्राज्यवादने कहा—'आर्य्यपुत्र हिटलर और सूर्य्यपुत्र जापान पूजा कररहे हैं।'

'और यह क्या है ?' वरुणने पूछा। साम्राज्यवादने खिसियाकर कहा—'श्रीमान्, यह स्तालिनग्राद है। नाक रगडकर मरगया, मगर इसे

...जीत पाया। यहाँ लोकशक्ति इतनी प्रबल है! समझके परेकी सी ज्ञात है। मुझे कभी-कभी सदेह होता है कि आप तो कहीं इन्हे सहायता नही देरहे।'

'अजी राम भजो भाई साम्राज्यवाद!' इन्द्रने कहा—'यह क्या कहरहे हो? देवताओंपर अविश्वास? तबतो तुम्हारा नाश अवश्यम्भावी है।'

'मेरे साथ आपके साम्राज्यका भी तो नाश है।'

यह सुनकर इन्द्र असमजसमे पड़गये। वरुणने इधर-उधर देखा। सहमा वह पुकार उठा—'इन्द्र, वह देखो स्वर्ग कितना धुँधला, सकुचित और क्षीण होकर न जाने कहाँ दूर उडता चला जारहा है?'

इन्द्रने देखा।

वरुणने फिर कहा—'अब अपना स्वर्ग सँभालियेगा कि यह पृथ्वी?'

इन्द्रने कहा—'चलो।'

इन्द्र और वरुण उडचले। सूर्य्यने रथको बढाया। साम्राज्यवाद चीखउठा—'मौकेपर दगा देरहे हो?'

दूरसे आवाज आयी—'बाज आये तुम्हारी दुनियासे।'

साम्राज्यवाद पुकारउठा—'मैं तो लुटगया!'

देवताओंका क्षीण उत्तर सुनायी पड़ा—'मानव जनशक्ति अपार है।'

साम्राज्यवादने रोर उठायी—'यह सिहासन, यह महल, यह मदिरा, यह अप्सरा······'

शब्द हवामे तैर उठे—'किसान मजदूरोंके मुँह कौन लगे!'

साम्राज्यवाद गरजउठा—'मेरी रक्षा करो······'

प्रतिध्वनि वायुमें विलीन होगयी—'हमे अपनी इज्जत प्यारी है। आजसे तुम्हारी दुनियासे नाता ही टूटगया·····'

अन्धविश्वास अबतक चुप था। अब सूर्य्यसे बोल उठा—'कहाँ जारहे हो ? सुनो तो !'

सूर्य्यने कहा—'प्रातः सन्ध्या मैं जिस भारत भूमिसे अर्घ्य पाता हूँ उसका क्या हाल है ?'

साम्राज्यवाद किटकिटाकर बोला—'वह गुलामीमे जकडी है। भूख, हत्या, बलात्कार और नङ्गापन मेरा साम्राज्य चलारहे हैं।'

सूर्य्यने विस्मित होकर पूछा—'भीम और अर्जुनके देशमें ?'

साम्राज्यवादने कहा—'वे तो मरगये। अब वहाँ आपसे भी अधिक मेरा राज्य है ?'

सूर्य्यने रथ बढाते-बढाते पूछा—'यह कब हुआ ?'

अन्धविश्वासने कहा—'तब देवता सोरहे थे।'

सूर्य्यने कहा— 'तो क्या चाहते हो ?'

'जापान और जर्मनीका नाश। और गुप्त रूपसे चाहते हैं कि रूस भी अधिक न बढने पाय।'

सूर्य्य बोला—'यह क्या ? कहते हो कि बराबरीकेलिए, धर्मकेलिए, मानवताकेलिए लडते हैं, और हिन्दुस्तानको आजाद नहीं करते ? यह कैसी स्वार्थ और अन्धकार-भरी बात है ?'

साम्राज्यवाद बोलउठा—'हाँ तुम भी चलेजाओ। जबतक जान रहेगी तबतक गुलामीको रखेगे · ··· '

एक हँसिया नीचेसे आकर अन्धविश्वासके लगा। वह गिरगया। सहसा नीचेसे भीषण गरज उठी। उस हुकारसे साम्राज्यवाद काँपउठा।

सूर्य्यने दूरसे पूछा— यह क्या हुआ ?'

हिन्दुस्तानमें एका होगया। अब कहाँ बचूँ ? उन्होंने गुलामीकी जजीरोंको तोड़दिया है।'

पृथ्वीसे भीषण जनगान ध्वनि उठरही थी—

हम मजलूमों की मेहनतसे
था स्वर्ग बना साम्राज्य बना,
है आज लिया बदला हमने
ऐ झंडे लाल सलाम तुझे।

साम्राज्यवादके पैर लडखड़ाये और वह मूर्छित होकर गिरगया। आकाशमें झंडा फहर-फहरकर पूछ उठा—सुना करते थे यहाँ कोई स्वर्ग था ? कहाँ है वह स्वर्ग ? पृथ्वीसे भी अच्छा वह स्वर्ग कहाँ है ?